25 रुपये

अंक – 25

जनवरी 2007 – सितम्बर 2008

चन्द्रताल

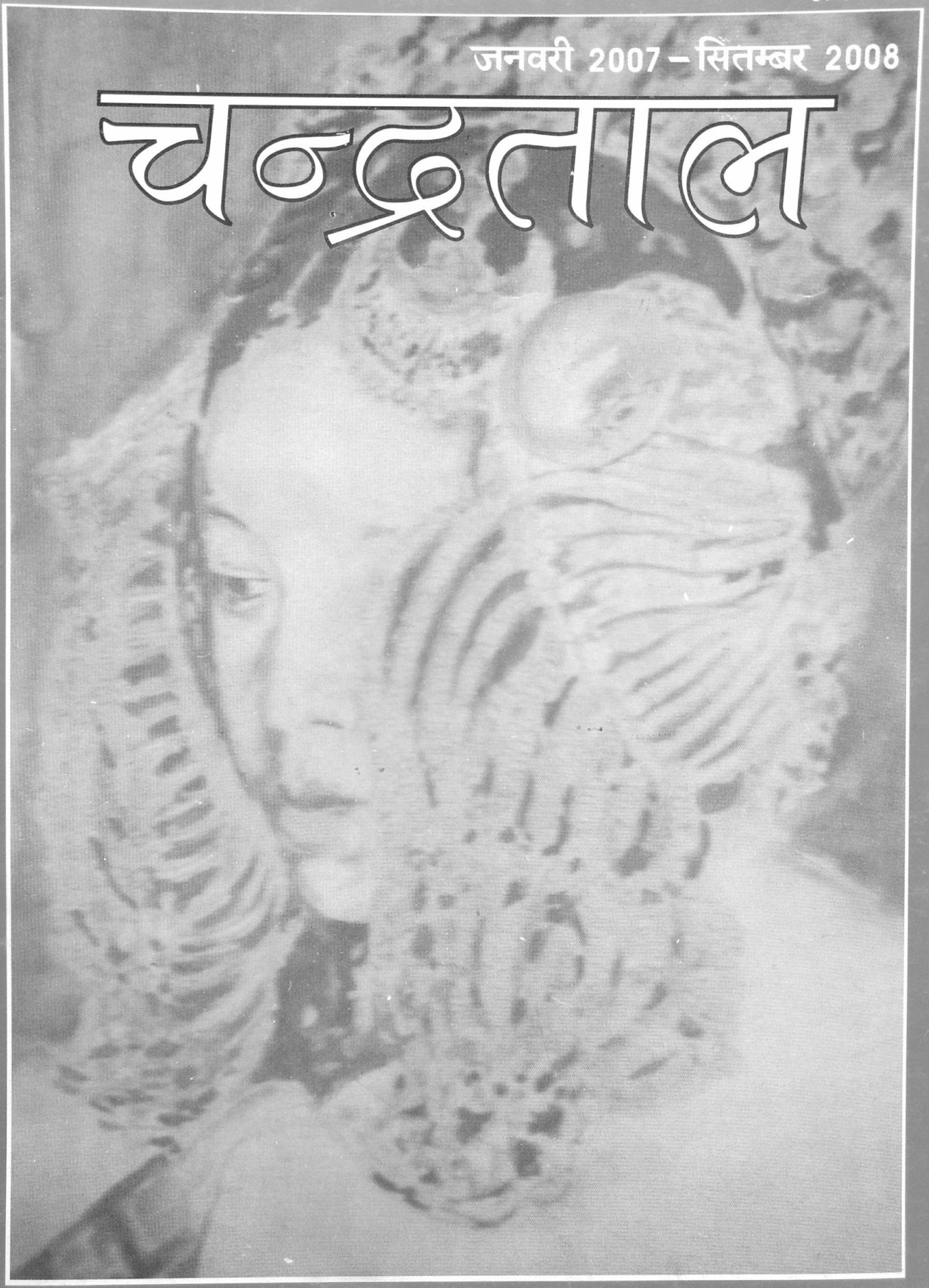

संस्थापक
स्वांगला एरतोग,
लाहुल–स्पीति में कला एवं संस्कृति उत्थान हेतु सोसाईटी (रजि0) संख्या ल.स./42/93
सोसाईटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट 21, 1860

संपादक
सुश्री डॉ0 छिमे शाशनी

उप संपादक
बलदेव कृष्ण घरसंगी

संपादकीय सलाहकार
बिशन दास परशीरा
अजेय कुमार

सम्पर्क :
संपादक – चन्द्रताल
पोस्ट बॉक्स 25, मुख्य डाकघर ढालपुर
कुल्लू–175101 (हि0प्र0)
फोनः 01902–260348

अधिकृत एजेंट :

केलंग
श्री राम लाल, राम लाल की हट्टी
(शिव मन्दिर के पीछे), अप्पर केलंग,
लाहुल–स्पीति

उदयपुर
श्री शिव लाल, शिवा जनरल स्टोर,
निकट मृकुला देवी मन्दिर, उदयपुर,
लाहुल–स्पीति

चन्द्रताल त्रैमासिक सहयोग राशि :
वार्षिक : एक सौ रुपये
एक प्रति : पच्चीस रुपये

पत्रिका पूर्णतः अव्यवसायिक तथा संपादन प प्रबन्धन अवैतनिक है।

स्वंगला एरतोग सोसाईटी रजि0 के लिए प्रकाशक एवं मुद्रक सतीश कुमार लोप्पा द्वारा सिटी कम्पयूटर ढालपुर, कुल्लू से टाईप सैटिंग तथा मुद्रित।

आभारः मुख पृष्ठ रेखाचित्र सुरेन्द्र शौंडा

रचनाओं में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं, उनमें संपादकीय सहमति आवश्यक नहीं।

संपादकीय 1

पाठकीय 2
कविता 3–5

आज का धर्म — सीता राम गुप्ता
कसक — डॉ0 शकुन
मां! यह कैसी भीड़ है? — डॉ0 उरसेम लता
उचित समय — अशोक कुमार

कहानी

अंतहीन — शेर सिंह — 6–16
वो सुबह कभी तो आएगी — स्नेहलता (सीमा) — 17–18
कसौटी — बलदेव कृष्ण घरसंगी — 19–20
लोकगाथा — 21–23
वरदान याचना करने का गीत — स्व0 के0 अंगरूप

लाहुली
क्षेत्रीय दृष्टि
रिश्तों का घाल–मेल — सतीश लोप्पा — 24–25

धर्म
आर्य असंग और विज्ञानवाद — टशी पलजोर — 26–28

जीवनी
मिला रेपा द्वारा लोक देवताओं की स्तुति — अजेय — 29–30

संस्कृति
पश्चिमोत्तर हिमालय की सांस्कृतिक
समस्याएं एवं उन की व्यापकता — डा0 बनारसी लाल — 31–41

देव परम्परा
कुलूत जनपदों में नागों और अप्सराओं का वर्चस्व — तेजराम नेगी — 42–45
लोक साहित्य
पटनी मुहावरे — विकास ओथड.वा — 46
उत्तुंग एवरेस्ट — प्रेम सिंह — 47–53

यात्रा
पतित पावन नीलकंठ महादेव की यात्रा — विकास ओथड.वा — 54–55

विविध
भौतिकता और अध्यात्म — सुखदास चित्रकार — 56
एक कला ही तो है व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास — सीता राम गुप्ता — 57–58
आर्थिक विकास की दौड़ में लाहुली ग्राम समाज में

मानव मूल्यों का ह्रास — ठिनले शाशनी — 59–65
हादसों के शहर में सम्भावनाओं के द्वार — अशुमाला — 66–70
समय किस तरह से बीत गया — शिवकुमार ठाकुर — 70

ऊं मणि पद्मे हूँ — श्रवण कुमार — 71

संपादकीय

आज लाहुली समाज व्यापक सामाजिक बदलावों के दौर से गुज़र रहा है। न केवल आम लोगों की सोच में परिवर्तन आ रहा है, अपितु सामाजिक मूल्य भी परिवर्तित हो रहे हैं। सामाजिक सम्बन्धों में भौतिकतावादी दृष्टिकोण, पारिवारिक ढ़ांचे में परिवर्तन, खान–पान, रहन–सहन के साथ सम्बन्धों में पारम्परिक आदर्शवाद की जगह व्यवहारिकता और व्यावसायिकता ले रही है। ये सामाजिक रुझान नकारात्मक ही हों ऐसा नहीं है, परन्तु हमारे पारम्परिक सामाजिक मूल्यों पर प्रश्नचिन्ह अवश्य लगाते हैं। सामाजिक मूल्य किसी भी समाज की संस्कृति में सर्वाधिक स्पष्ट रूप से प्रतिविम्बित होते हैं संस्कृति ही समाज की अस्मिता की परिचायक है। आज सामाजिक सांस्कृतिक बदलावों के अंधानुकरण की प्रवृत्ति समाज को किस दिशा में ले जाएगी यह विचारणीय प्रश्न हैं। हमारे संस्कारों की परम्पराओं की एक गरिमा है, विशिष्टता है, परिवर्तन के प्रलोभन में पड़ कर इस गरिमा को खो न दें, इस पर विचार करना आवश्यक हैं।

प्रस्तुत अंक रचनाओं की विविधता को ले कर आपके सम्मुख प्रस्तुत है। 'उत्तुंग एवरेस्ट' लेख में जहां पर्वतारोहण के रोमांच, जिज्ञासा और संघर्ष को दर्शाया गया है, वहीं हिमशिखर तक पहुंचने के पड़ावों के विवरण द्वारा प्रकृति की नैसर्गिक सुषमा, सौम्य और रौद्र रूपों का चित्रण दर्शनीय है। 'आर्य असंग और विज्ञानवाद' में बौद्ध धर्म की वैज्ञानिकता का परिचय दिया गया है, तो 'हादसों के शहर में सम्भावनाओं का द्वार' लेख गोहाटी के पर्यटन स्थल का चित्रण और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक स्थिति के आकलन के माध्यम से बुनियादी समस्याओं से जूझते सम्पूर्ण भारत का दृश्यांकन है। पश्चिमोत्तर हिमालय की सांस्कृतिक समस्याएं हिमालयी संस्कृति की संरचना का परिचायक है, इसी तरह आर्थिक विकास की अंधी दौड़ लेख में लाहुली समाज की सामाजिक, आर्थिक स्थिति, परम्पराओं और बदलते समय के साथ बदलती मानसिकता तथा विकासशील प्रवृत्ति का परिचय दिया गया हैं। कला सम्बन्धी लेखों में कला और मानव जीवन के गहरे सम्बन्ध और जीवन पर कला के प्रभावों के महत्त्व को दर्शाया गया हैं। 'अंतहीन' कहानी प्रकृति से जूझते लाहुल के लोगों के संघर्ष का मुंह बोलता चित्र है तो 'वह सुबह आएगी' कहानी एक ओर तथाकथित बुद्धिजीवी वर्ग की मानसिकता को दर्शाती है, वहीं साधारण केन्टीन वाले के माध्यम से मानवीय संवेदना का चित्रण है। स्थायी स्तम्भ का विषय परातत्व के प्रति आस्था का है तथा परम शक्ति की अवमानना का प्रकोप किस प्रकार प्रलय का तांडव बन जाता है इसे 'कुंलूत जन पद में नागों और अप्सराओं का वर्चस्व' लेख में दर्शाया गया है।

पत्रिका को रोचक बनाने का यथा सम्भव प्रयास किया गया है। नव संवत्सर की आप सब को हार्दिक शुभ कामनाएं।

संपादक

पाठकीय

लाहुल की तोद घाटी के इतिहास, संस्कृति और धर्म से जुड़े खंगसर राजघराने में संपन्न होने वाले ''छोद्पा'' त्यौहार के बारे में मैंने कुछ लिखने का प्रयास किया है। हालांकि मैंने देखा कि लाहुल की तोद घाटी से सम्बद्ध किसी भी विषय पर आपकी चन्द्रताल पत्रिका में प्रकाशन न के बराबर होता है। अतः मुझे आशा है कि आप इस लेख का प्रकाशन अवश्य करेंगे। लाहुल के इतिहास, संस्कृति, आर्थिक, सामाजिक और समसामयिक विषयों पर अनेकानेक लेख–आलेख आप अपनी पत्रिका में छापते हैं जो कि निःसंदेह प्रशंसनीय है जिससे न केवल लाहुल के लोग, अपितु संपूर्ण देश में रह रहे हिंदी भाषी भारतीय लोग भी लाहुल–स्पीति के इतिहास, विशिष्ट संस्कृति और विविध परंपराओं से रूबरू होते हैं। परंतु मैंने अक्सर देखा है कि स्पीति के विद्वान या स्पीति से संबन्धित विषयों के लेख पढ़ने को कम ही मिलते हैं। क्योंकि स्पीति भी इस ज़िले का अभिन्न अंग है, वहां की समृद्ध संस्कृति पर भी कुछ लेख हम आपकी पत्रिका में भविष्य में पढ़ना चाहेंगे। यहां मैं एक और बात कहना चाहता हूं कि जिस प्रकार आप सम्पादक वृन्द हिन्दी भाषा में चन्द्रताल का प्रकाशन करते हैं जोकि निश्चय ही काबिले तारीफ है। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी साहित्य जगत में भी आप ''स्वंगला एरतोग'' परिवार एक अमिट छाप छोड़ रहे हैं। अतः मेरा यह मानना है कि हम लाहुली अहिन्दी भाषी होने के बावजूद भी हिन्दी साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। सो कृपया इसे बरकरार रखें।

ठिनले नमग्ज़ल शास्त्री।

''चन्द्रताल्'' का दिसंबर – 2006 अंक अनेक स्तरों पर कई हाथों से होता हुआ अन्ततः अक्तूबर – 2007 में प्राप्त हुआ। धन्यवाद! चन्द्रताल का यह दूसरा अंक देख रहा हूं। पिछले अंक की तुलना में इस बार पृष्ठों की संख्या संभवतः कम हुई है।

दिसंबर, 2006 अंक में बलदेव कृष्ण घरसंगी का आलेख ''लाहुल विज़न 2025'', सतीश कुमार का ''बदलते रिवाज़–रूप अनेक'' और विकास का ''पटनी बोली में प्रचलित मुहावरे एवं कहावतें'' पढ़कर अच्छा लगा। बदलते रिवाज़–रूप अनेक में सतीश लोप्पा ने जो विचार व्यक्त किए हैं, वे उल्लेखनीय हैं। लेकिन कोई भी परंपरा, कोई भी रीति–रिवाज़ किसी भी समाज की थाती होती है, संस्कृति की वाहक होती है। परंपराएं इतनी आसानी से नहीं बदलती हैं। लेकिन उन्होंने जो विचार व्यक्त किए हैं वे विचारणीय हैं। विकास द्वारा प्रस्तुत मुहावरे, लोकोक्तियां पढ़ते हुए सच मानें, मन प्रसन्न हो गया। इनमें से कई मुहावरे/लोकोक्तियों को मैं नहीं जानता था। ठहाके मार कर हंसा। तोबदन का आलेख भी जानकारी से परिपूर्ण है। अन्य सभी रचनाएं भी अच्छी हैं।

आशा है, भविष्य में भी लोक संस्कृति का रंग आप ''चन्द्रताल'' में भरते रहेंगे।

शेर सिंह
प्रबंधक राज भाषा,
सिंडीकेट बैंक, क्षेत्रीय कार्यालय,
सोमाजीगुड़ा, हैदराबाद– 500 082,

आज का धर्म

'धर्म' वो
बेड़ियां अज्ञान की
जो काट दे,

आज का जो धर्म है
धर्मसंकट में वो डाल दे
न जीने दे
न मरने दे
न मुक्त होने दे
मुक्त करने की बजाए
बेड़ियां कुछ और घट में डाल दे।

सीता राम गुप्ता

उचित समय

मां–बाप की फटी बिबाई
शुरू जब खेत की सिंचाई
बेटा मशगूल पढ़ाई में
बेटी कर रही किचन की सफाई
बेटा–बेटी की चौड़ी खाई
पीटने लगी है घर में माई।
बेटा पढ़ाई के बहाने सवार
अपने ख्वाबों की किश्ती में,
बेटी किचन में छील रही आलू
फिर भी अब्बल है पढ़ाई में
मां–बाप उष्ण–शीत लहर में
जूझ रहे प्रकृति की कहर से
मेहनत में विश्वास पला है,
बेटे की अनभिज्ञता में भविष्य छला है।
मेघ की गड़गड़ाहट ने
बिजली की गर्जना ने
चेताया मां–बाप को यह नहीं है प्रलय
बेटा–बेटी समान समझ यही उचित समय।

अशोक कुमार
राजकीय महाविद्यालय कुकुमसेरी

कसक

एक कसक सी होती है कभी कभी,
बस यूं ही दिल के किसी कोने में।।
सोचती हूं जब उस स्वप्न के बारे में,
आंख खुलते ही जो टूट के बिखर जाता है।।
बंद पलकों में संभाल रखो जिसे,
हकीकत की एक ठोकर से चूर हो जाता है।।
मीठा सा एक अहसास बन रहता है स्वप्निल आंखों में,
नम पलकों में कहीं खो के रह जाता है।।
कुछ आवाज़ें, कुछ आहटें सुनाई देती हैं,
भोर की हलचल में सब डूब के रह जाता है।।

—शकुन

मां, ये भीड़ कैसी है?

मृत पड़ी है देह
बस
देह भर है आज मां
हैरां हूं
इस निष्प्राण देह ने जुटा ली है सैंकड़ों की भीड़
इन्हीं में कुछ का इन्तज़ार रहा
उसकी बूढ़ी आंखों में बना बरसों
पर
नहीं जुटा पाई मां की कराहती रुग्ण देह उन्हें खुद तक
इन्तज़ार की आस लिए
चल ही बसी वो आज।
आज?
आज हवाओं में हर ओर उसके न होने का हाहाकार है
स्तब्ध है क्षण
देखकर हज़ार–2 आंखों से निकलते आंसुओं का सैलाब
और
पत्थरों को भी रुला देने वाले संवेदना युक्त शब्दों को सुनकर।
आज देह मात्र है मां
कई चेहरों की मां है वो
जो
बिलख रहे हैं बेतरह आज

काश!
वो देख पाती उन्हें
सुन पाती उनके ये शब्द
तरसती रही जिनके लिए बरसों
मगर
वो शांत है
न कोई नाम है
न आवाज़
न पहचान है कोई
क्योंकि
अब 'शव' मात्र है मां (सब यही कहते हैं)
स्तब्ध है पीड़ा
व्यथा स्तब्ध है
काश!
देख पाती मां, कि कैसी भीड़ जुटा ली है निष्प्राण देह ने
वो अब भी चुप है
चुप ही रहेगी
जानती हूं
इसका जवाब तब भी नहीं दे पाती
जो
कहीं उठ खड़ी होती
अपनी मृत देह से तुम
है न मां!

डॉ० उरसेम लता

श्रद्धांजलि

गत 6 जून, 2008 को श्री रणवीर चन्द ठाकुर का अल्प बीमारी के बाद आकस्मिक निध ान हो गया। स्वंगला एरतोग एवं चन्द्रताल परिवार ने अपना एक युवा सदस्य खो दिया।

श्री रणवीर ठाकुर का जन्म लाहुल की तोद घाटी के मेंह गांव में वीर शिरोमणि स्व॰ केप्टन भीम चंद जी (वीर चक्र बार) के घर हुआ। स्वभाव से विनम्र एवं मृदु भाषी रणवीर जी स्वंगला एरतोग सोसायटी के संस्थापक सदस्य एवं कोषाध्यक्ष थे। कई वर्षों तक चन्द्रताल पत्रिका के वितरण व्यवस्थापक के पदभार का भी निर्वहन करते रहे।

शोकाकुल चन्द्रताल परिवार अपने दिवंगत युवा सहयोगी को हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

संपादक

अंतहीन

शेर सिंह

मोड़दार सड़क पर टैक्सी भागी जा रही थी। जैसे–जैसे चढ़ाई शुरू हो रही थी, टैक्सी की स्पीड कम होती जा रही थी। कुछ ही मीटरों के फासले वाले मोड़ों पर टैक्सी जैसे ही मुड़ती, अंदर बैठी हुई सवारियां लगभग एक दूसरे पर गिर–गिर पड़तीं लेकिन ठसाठस भरी टैक्सी में धक्के लगने का कोई चांस नहीं था। कारण, अंदर नौ लोग बैठे थे। गोरखा ड्राईवर समेत दस जने थे कुल। सभी नौजवान, केवल एक अधेड़ उम्र स्कूल मास्टर और एक छोटी बच्ची के अतिरिक्त दो औरतें, बाकी सभी मर्द।

यह मई महीने की पंद्रह तारीख थी। अल सुबह साढ़े चार बजे का समय। यही समय था जब मनाली से चले थे। मौसम बिलकुल साफ था। आसमान में तारे अब छिपने की फिराक में थे। चांदनी अब फीकी पड़नी शुरू हो गई थी। टैक्सी से बाहर देखने पर सड़क किनारे के पत्थर, चट्टानें और पेड़ पौधे फीकी चांदनी में नहाए हुए दिख रहे थे। ज्यों–ज्यों गाड़ी आगे बढ़ती जा रही थी, छोटे छोटे मोड़ आते जा रहे थे। टैक्सी की गति कम से कमतर होती जा रही थी। सड़क में पानी भरे गड्ढों पर जब टैक्सी के टायर पड़ते तो टैक्सी उछल–उछल सी जाती पर मोटा गोरखा ड्राईवर बड़ी सावधानी से गाड़ी चला रहा था। गाड़ी मोड़ के बाद मोड़ चढ़ती ही जा रही थी। उसके साथ–साथ ही बड़ी–बड़ी चट्टानें भी सड़क के किनारे अपनी बाहें फैलाए, अपनी शक्ति का प्रदर्शन करते जा रहे थे जैसे।

पेड़ पौधे सब पीछे छूटते जा रहे थे। गुलाबा कैम्प के बाद अब सिर्फ चट्टानें थी और बर्फ की मोटी मोटी परतें दिखने लगी थी। ज़मीन को अपने में समेटे। पहाड़ों चट्टानों पर अपनी सफेद मटमैली भारी चादर उढ़ाए। सड़क के ऊपर की ओर बर्फ की मोटी दीवार शुरू हो गई थी। नीचे की तरफ गहरी खाईयां और नुकीली सपाट चट्टानें की तहों से भी अपने सिर उठाए मौन खड़ी थी। दुनियां से बेखबर, जैसे घोर तपस्या में लीन हों।

टैक्सी लोगों से खचाखच भरी होने के बावजूद भी अब ठंड लगनी शुरू हो गई थी। दरअसल, टैक्सी में बैठे सभी लोग लाहुल में अपने अपने घर, गांव को जा रहे थे। वह भी ज़रूरी काम से अपनी पत्नी और बच्चे के साथ घर जा रहा था। अपने सिर और कान को मफलर से कसते हुए बगल में बैठी अपनी पत्नी से वह बोला, "रंजना . . अर्चू को चादर से अच्छी तरह ढांप लो। बहुत ठंड हो गई"। "अभी सो रही है नहीं तो बहुत तंग करती।" उसकी पत्नी ने गर्म चादर को हौले–हौले बच्ची की पीठ पर ठीक, से लपेटते, उढ़ाते हुए कहा।

"पंडत जी। . . आप कितने साल के बाद घर जा रहे हैं?" साथ बैठे उसके मित्र अमर नाथ ने उससे पूछा। वह और अमर नाथ एक दूसरे को बचपन से जानते हैं। दोनों के गांव आस पास ही

हैं। "बैसे साबजी मैं हर वर्ष एक बार घर को ज़रूर जाता हूं। परन्तु कभी–कभी अन्तराल जरूर बढ़ जाता है।"

"आप को पैदल चलने की आदत नहीं रही होगी, चढ़ाई में दिक्कत तो नहीं होगी"। अमर नाथ ने उसके बढ़े हुए पेट को लक्ष्य कर कहा और हंस पड़ा।

"हड्डियां फौलाद की हैं प्यारे, हमारे खून में ही मौजूद है पैदल चलना। डरने की क्या बात"। उसने हंसते हुए जबाव दिया। लेकिन वह जानता है अब वह पहले की तरह चुस्ती–फुर्ती से नहीं चल सकता है। दम फूलता है। वाकई आदत नहीं रही है, मैदानों की गर्म हवा और धूल खाते–खाते। नौकरी के चक्कर में वह अपने क्षेत्र–प्रदेश से बाहर है।

"क्यों भई भादर मढ़ी पहुंचने में अभी कितनी देर लगेगी?

"बाबू जी मढ़ी में तो अब दस मिनट में पहुंच जाएंगे", गोरखा टैक्सी ड्राईवर अपनी मोटी गर्दन को थोड़ा उसकी ओर घुमाते हुए बोला। पहले उसने ड्राईवर को तिब्बती ही समझा था। वह तो स्वयं ड्राईवर ने ही बताया कि वह नेपाली है, बहादुर है। वह लंबा, भारी वदन और गौरवर्ण था। इसी से वह उसे तिब्बती समझ बैठा था।

"हम तो रह ही जाते पंडित जी आप ने अच्छा किया। ग्रिफ वालों से परमिशन ले लिया। बीबी बच्चों वाले के साथ यही तो फैदा है। हर कोई उनसे हमदर्दी रखता है"। छोटे कद वाले एक अन्य युवक ने हंसते हुए कहा। उससे वह कल ही मिला था मनाली में, पहली बार। वह भी किसी ऐसी ही टैक्सी की खोज में थे जो उसे रोहतांग टॉप तक छोड़ दे। उसके नाम आदि की जानकारी तो उसे नहीं थी लेकिन वह उसे अपना ही लगा, अपने जैसा। दरअसल, ग्रिफ वाले किसी भी गाड़ी को मढ़ी से ऊपर नहीं ले जाने दे रहे थे। पूरा रास्ता बर्फ की मोटी तहों के नीचे दबा, छिपा पड़ा था। ग्रिफ वाले दिन भर स्नोकटर और डोज़र से बर्फ को काटते–हटाते सड़क को चलने लायक बना रहे थे। वैसे उन्होंने रोहतांग टॉप के करीब तक बर्फ को सड़क से हटा लिया था। काम जारी था। इसलिए किसी गाड़ी को आगे नहीं जाने देते थे। लेकिन केवल उनको जो उनके कमांडर से लिखवाकर लाते, उन्हें ही जहां तक रास्ता साफ था, जाने दे रहे थे। कल शाम को दो तीन चक्करों के बाद ही वह रात को नौ बजे के लगभग ग्रिफ वालों के कमांडर से मिल सका था। उसने कमांडर साहब को बताया था कि उसकी पत्नी छोटी बच्ची साथ है और वे भुवनेश्वर से आ रहे हैं। घर जाना ज़रूरी है छुट्टियां कम हैं वर्दी में लकदक कमांडर ने उसे ध्यान से देखा था और उसकी अर्ज़ी में ही जहां तक रास्ता साफ सुरक्षित है वहां तक गाड़ी ले जाने की अनुमति लिख दी थी।

टैक्सी झुकती उछलती धीरे धीरे दौड़ रही थी। "अमर आप के पास कितना सामान है"?

"मेरे पास तो काफी भारी बोझा है भईया . . . होगा कोई बीस किलो। पूरा रुकसक ऊपर से नीचे तक भरा है।"

"बीस किलो। आप इतना उठा सकेंगे? वह हैरानी से पूछने लगा।" हमारे पास तो चार पांच किलो का छोटा सा बैग है . . . वह भी भारी लग रहा है। आप छड़े हैं न इसलिए। भई हम तो बच्चे के साथ हैं।"

ज़रूरत पड़े तो और लोग भी मदद करेंगे। मैं तो साथ ही हूंगा न"। अमर नाथ ने उसे आश्वस्त किया।

"लो बाबू जी . मढ़ी पहुंच गए"। बहादुर ने गाड़ी को बेरियर के पास रोकते हुए कहा ओर उससे वो कागज़ देने के लिए कहा जिसमें गाड़ी को आगे ले जाने की अनुमति दी गई थी। बहादुर गाड़ी का इंजन चालू रखते हुए नीचे उतरा। टैक्सी का दरवाज़ा खोलने से हड्डियां कंपाने वाली सर्द हवा का तेज़ झोंका अंदर घुसा।

अब तक सुबह के 6.00 बज गए थे। जहां तक नज़र जाती, बर्फ ही बर्फ बिछी, फैली नज़र आ रही थी। आसमान से लेकर धरती तक। आसमान छूते पहाड़ की बर्फ लदी चोटियां जैसे आकाश को धरती से मिला रही थी। सफेद पहाड़ और नीले आकाश के सिवा कुछ भी नज़र नहीं आ रहा था। सनसनाती बर्फीली हवा बेवजह सीटियां मारने लगी थी। टैक्सी के अंदर बैठे–बैठे सभी को कंपकंपी होने लगी। एक दो जने पेंट की जेबों में हाथ डाले, सिर और कान को मफलर से कसते नीचे उतरे। परंतु अन्य कोई नीचे उतरने की हिम्मत नहीं कर सका।

टैक्सी के अंदर बैठे लोग आपस में बतियाने लगे। एक दूसरे के बारे में पूछने, जानने लगे। कारोबार नौकरी, घर परिवार, ऐसे मौसम में घर जाने की मजबूरी। बातों ही बातों में जान पहचान होने लगी गांव–इलाके पहचान में आने लगे। रोहतांग, रोहतांग के पार। कठिन मौसम के, मौत के मुंह से बचने के अनुभव खुलने लगे। शायद सभी मन ही मन अपने ईष्ट देवी देवताओं को याद करने, सकुशल घर पहुंचने की प्रार्थनाओं से अपने आप को तसल्ली देने की कोशिश कर रहे थे।

"क्या बात है अर्चू बेटा। नींद नहीं आ रही?" उसने अपनी तीन वर्षीय बेटी से कहा जो अब जाग गई थी। "नहीं . . . कह कर वह आंखें फाड़–फाड़ कर टैक्सी से बाहर देखने लगी थी। आईस है न पापा . . .।

"नहीं बेटा। यह आईस नहीं स्नो है . . . बर्फ।

"स्नो क्या होता है पप्पा?"

बाहर यह जो सफेद चादर सी बिछी है यही बर्फ।

"यह लड़की तो अजीब–अजीब सवाल पूछ कर परेशान करती है" रंजना ने बेटी के प्रश्नों से तनिक झल्ला कर कहा।

"बेचारी सच्ची है। कभी बर्फ नहीं देखी होगी।" साथ बैठी औरत अर्चु को देखते हुए बोली।

"नहीं . . . बर्फ तो इसने पहले भी देखी है। याद थोड़े ही होगा इसे"। उसकी पत्नी ने धीरे से कहा।

"अच्छा हुआ ग्रिफ वालों ने इजाज़त दे दी। नहीं तो चढ़ाई में बहुत मुश्किल होती।" अधेड़ उम्र स्कूल मास्टर अपनी आंखों को नचाता हुआ बोला। "मामा। हमें अपनी चिंता नहीं है। बच्चे के साथ हैं न . इसलिए थोड़ा मुश्किल लग रहा है।" रंजना मास्टर जी की ओर देखते हुए बोली।

"डरने की कोई बात नहीं। हम साथ हैं न पंडत जी।" अमरनाथ ने उसे फिर दिलासा देने की कोशिश की। आखिरकार मई का महीना था। कोई नवंबर दिसंबर नहीं।

बहादुर अभी तक नहीं आया था। बेरियर के साथ बने छोटे से घर के भीतर गया तो निकला नहीं। पंद्रह बीस मिनट हो गए थे। जो दो तीन नौजवान नीचे उतरे थे, वे अपनी हथेलियों को आपस में रगड़ते टैक्सी के भीतर आ कर बैठ गए। उनकी नाक के हिस्से ठंड से लाल हो गए थे।

फिर बहादुर दिखाई दिया। डांगरी पहने एक ग्रिफ के जवान के साथ। ग्रिफ का वह जवान टैक्सी के नंबर प्लेट आदि को ध्यान से देखने लगा। दस्ताने पहने हाथों में उसने दाएं हाथ में अर्ज़ी वाला कागज़ पकड़ रखा था। बहादुर उसके इर्द गिर्द घूमता कुछ कह रहा था। लेकिन उस जवान का चेहरा बर्फ के समान ही ठंडा और सपाट दिख रहा था। पीछे आकर खड़ी हुई दूसरी टैक्सी को उसने पीछे करने के लिए कहा। जब दूसरी वाली टैक्सी काफी पीछे हो गई तो बेरियर के पास आ कर उस पर लगाए ताले पर से बर्फ हुई पानी की बूंदें साफ करने लगा, इत्मीनान से, जैसे किसी को भी कोई जल्दी न हो। फिर ताले को खोल बेरियर से बंधे लपेटे तारों को धीरे धीरे खोलने लगा। इस बीच बहादुर स्टियरिंग संभाल चुका था। जब तार और मजबूत रस्सी को जवान ने ढीले कर दिए तो पीछे से आई दूसरी टैक्सी के ड्राईवर को उसने दोबारा और पीछे हटने के लिए कहा। फिर बेरियर के लोहे का मज़बूत खंभा उठा दिया। बहादुर टैक्सी को सर्र से आगे निकाल ले चला। उसके साथ ही बेरियर का खंभा अपनी पूर्वस्थिति में आ गया। पीछे से आई टैक्सी को बेरियर बंद करते हुए उसने रोक दिया था।

"शुकर है . . . हमारी गाड़ी को उस ने बेरियर टपने दिया। अब गाड़ी वहां तक ले जाएंगे जहां तक रास्ता साफ हो"। बहादुर खुश–खुश बोला। उसके लिए अच्छा था। जहां तक गाड़ी ले चले उतने ज़्यादा पैसे मिलेंगे।

"क्या वह दूसरी गाड़ियों को नहीं छोड़ेगा?" किसी ने बहादुर से कहा।

"नहीं वह बड़ा पक्का है आजकल तो वह यहां का राजा है। हमें तो केवल परमिशन की वजह से छोड़ा है।

" दूसरी टैक्सी की सवारियों को मढ़ी से ही पैदल चलना पड़ेगा न?"

"हो सकता है। वैसे वह है बड़ा काईयां . . . जो कोई उसकी मिन्नत करता है सब्ज़ी, ब्रेड

आदि देता है उसे भी बेरियर टपने देता है। उसे पैसे नहीं, ताज़ा सब्ज़ी– ब्रेड–बटर चाहिए।'' ठहाका लगाते हुए बहादुर बता रहा था।

''क्यों भाई भादर। ऊपर तक पहुंचने में कितना टाइम लगेगा''?

''भाई जी . . . आधा पौना घंटा तो लग ही जाएगा। देखो न . . . रास्ता कैसा खराब है''। हंसमुख बहादुर विंडस्क्रीन पर नज़र जमाए–जमाए बोल रहा था।

ज्यों–ज्यों टैक्सी आगे बढ़ती जा रही थी सड़क के दोनों ओर बर्फ के पहाड़ों की लंबाई और ऊंचाई भी बढ़ती जा रही थी। आठ दस फुट के बराबर बर्फ की ऊंचाई और उनके बीच से गुज़रती टैक्सी किसी खिलौने की तरह लग रही थी। जहां तक दृष्टि जाती केवल बर्फ ही बर्फ नज़र आ रही थी। लगता नहीं था कि यह बर्फ कभी पिघलती भी होगी। इस के नीचे ज़मीन और ज़मीन में कोई पेड़ पौधे भी लगते होंगे। कहीं–कहीं ऊंची तिरछी और दूर तक फैली चट्टानों के सिर से, बाहों से और छातियों से जमे पानी की मोटी–मोटी छड़ियां पारदर्शी कांच के रॉड जैसी लटकी, हिलती नज़र आ रही थीं। किसी झाड़फानूस सरीखे। जिनके स्विच ऑफ कर दिए हों जैसे। जड़ों से मोटी और आगे से किसी नुकीली सूई समान। यदि किसी के सिर पर गिरे तो घायल किए बिना न छोड़े। लेकिन दिन के समय इन छड़ों की जगह पानी की धारें गिरती रहती हैं टप टप।

''न जाने कितने लोग हर साल इन रास्तों में . . . . मौत के मुंह में समा जाते हैं? अधेड़ उम्र स्कूल मास्टर ने खामोशी तोड़ते हुए कहा।

''लेकिन आने जाने वाले यह भी तो नहीं देखते कि मौसम कैसा है . . . रास्ता साफ है या नहीं''।

''और क्या . . . लेकिन मरने वाले बेचारे गोरखे बगैरे ही तो होते हैं।''

''इन सालों के पास ढंग के कपड़े ही कहां होते हैं। सूती पजामा . . . नीलामी के कोट . . . नाईलोन की साड़ियां, नंगे पैर। ज़्यादा से ज़्यादा प्लास्टिक के बूट या चप्पल। क्या यह रोहतांग के लिए ठीक है? बच्चे और बोझा इनकी पीठ से कभी उतरते नहीं।''छोटे कद वाला युवक अपनी आंखों को नचाता हुआ बोला। सामान के नाम पर उस के पास कुछ भी नहीं था। केवल एक मोटे डंडे के सिवा।

''नहीं–नहीं ऐसी बात नहीं . . . हमारे अपने भी लोग होते हैं। आजकल के छोकरे कहां मानते हैं, किसी की बात। मौसम खराब हो तो भी चल पड़ते हैं। रास्ते का पता होता नहीं, धुंध में गुम होकर साथियों से बिछुड़ जाते हैं . . . और . . .।'' मास्टर अपनी आवाज़ में दर्द भरकर बोला।

रोहतांग तो है ही ऐसा। यहां तो जो कोई दूसरे की मदद करेगा . . .दूसरे की चाल से, इंतज़ार करता हुआ चलेगा . . .भला चंगा होता हुआ भी रास्ते में रह जाएगा। जीने मरने का प्रश्न हो जाता है भई।''

"हां और क्या? सगे भाई एक दूसरे को आगे निकलने के लिए कहते हैं अगर कुछ हो भी जाए तो कम से कम एक भाई तो ज़िंदा घर पहुंच सके।" एक अन्य ने अपने दिल की भड़ास निकाली।

लेकिन उसे अपने मामा जी याद आ गए। वह नवंबर महीने का शायद दूसरा सप्ताह था। मामा जी मानसिक और भावात्मक रूप से बहुत संवेदनशील हो गए थे। मामी की अस्थियों को हरिद्वार में गंगा जी में विसर्जन के पश्चात वापस घर लौट रहे थे। मामी की मौत के पश्चात मामा जी जैसे टूट गए थे। लेकिन उन्होंने अपने आप को संभाला हुआ था। लाहुल के लिए नवंबर तक बसें चलनी बंद हो गई थी। रोहतांग में पानी जमना शुरू हो गया था। इक्का दुक्का ट्रक या छोटी गाड़ियां ही चल रही थी। जोखिम उठाकर मामा जी ऐसे ही एक ट्रक में बैठ कर वापस घर जा रहे थे। टॉप से थोड़ा ही नीचे लाहुल की ओर बढ़ती गाड़ी के टायर पानी जम कर बनी बर्फ पर अचानक फिसल गए थे। और ट्रक पलट गया। दो तीन पलटियां खा गया। फिर सब कुछ खत्म हो गया। उस भयानक दुर्घटना में मामा जी की मौत को याद कर उसे जाने कैसा–कैसा लगने लगा। उसे अपने ही गांव के लाल चंद और शिव कुमार भी याद आ गए। वे अप्रैल में कुल्लू से कॉलेज में परीक्षाएं समाप्त होने के पश्चात घर को जा रहे थे। रोहतांग में बर्फ के बीच रास्ता तय करते, तलाशते हुए वे सो ही गए थे, सदा के लिए।

"लो बाबू जी . . . आगे तो रास्ता बंद है"। बहादुर की आवाज़ ने उस की तंद्रा को तोड़ा"। ओह। आगे कितने और मोड़ होंगे भादर?" सभी ने एक साथ प्रश्न किया। "पांच छह मोड़ तो होंगे ही।" बहादुर स्टियरिंग पकड़े, अपनी गर्दन को पीछे मोड़ते हुए बोला। सब के उतर जाने के पश्चात अब बहादुर को वापस नीचे की ओर जाने की उतावली होने लगी थी। उसे अभी शाम होने तक कई चक्कर लगाने हैं। टूरिस्टों को मनाली से मढ़ी तक लाने, ले जाने में।

"रंजना, तुम अर्चू को उठाओ। मैं बैग उठाता हूं। थक जाओ तो मैं उठाऊंगा अर्चु को।" उसने पत्नी से कहा।

"चलो बेटा . . . मम्मी की पीठ पर चलो।" बर्फ की ऊंची ढेरी पर बेटी को खड़ी करते और उसे पत्नी की पीठ में देते, वह बेटी से बोला।

"पंडत जी। आप बैग को कंधे पर लटका कर नहीं पीठ पर उठाओ। नहीं तो जल्दी थक जाओगे।" अमर नाथ ने उसे सावधान करतें हुए कहा और स्वयं अपने लाल रुकसक को पीठ पर उठा लिया। रुकसक उस के कूल्हों से लेकर सिर से भी ऊंचा था। पर वह बेखौफ, आंखों पर काले सन ग्लास लगाए और हाथ में मोटा, लंबा डंडा उठाए उसे दिलासा दे रहा था।

आठ दस फुट से अधिक ऊंची बर्फ की दीवारें आगे रास्ता रोके खड़ी थीं। दोनों ओर से बर्फ की ऊंची दीवारों से सड़क में सब बौने जैसे दिख रहे थे। टायर का निशान छोड़ती हुई टैक्सी वापस मढ़ी की ओर उतरने लगी थी। आगे सड़क बंद थी। बर्फ की पक्की दीवार को तनिक समतल

बनाकर छोटे–छोटे गड्ढे जो सीढ़ियों जैसे बन गए थे उन पर एक–एक कदम रखते हुए अब ऊपर की ओर चढ़ना था। यह थोड़ी समतल जगह थी जहां ग्लेशियर जमा था। दरअसल, यह ग्लेशियर का मुहाना ही था, जहां स्नोकटर ने बर्फ काट–काट कर बाहर रास्ते के किनारे फैंक दी थी। इससे हिमखण्डों की दीवारें और ऊंची हो गई थी।

"हां–हां संभल कर। छाते को ठीक से पकड़ कर चलना। उस ने धड़ाम से पानी मिले बर्फ पर फिसल कर गिर पड़ी पत्नी को हाथ पकड़ कर उठाते हुए कहा। कुछ लोग इस तेज़ी से बर्फ की दीवार चढ़ कर आगे बढ़े कि कुछ ही क्षणों में नज़रों से ओझल हो गए थे। "भैन जी . . . आप तो बहुत तेज़ हैं चलने में। पीठ पर किल्टा भी है। फिर भी . . . रंजना ने साथ चल रही औरत से उसकी पीठ पर लटके, बंधे किल्टे पर अपनी नज़र दौड़ाते हुए कहा।

"ज़्यादा भारी तो नहीं है जी . . . खाली–खाली है। घर में ज़रूरत पड़ती है न . . . इसलिए उठाकर चल रही हूं। वह औरत चलते–चलते ही कहने लगी। वह सामान्य कद की पतली सी महिला थी। तीसेक साल की।

धीरे–धीरे चढ़ाई बढ़ती ही जा रही थी, और उसके कदमों की रफ्तार भी कम होती जा रही थी। उसकी पत्नी अलग से पीछे पीछे चल रही थी। उसका चेहरा लाल हो गया था। वह अपने सूखे होंठों पर रह रह कर जुबान फेरने लगी थी। वह स्वयं भी तीन चार कदम चलता फिर खड़ा हो जाता। दूसरी महिला और उसका पति भी उनके साथ ही चल रहे थे। अमर नाथ काफी आगे धीरे धीरे चल रहा था। 'अमर! आप आहिस्ते–आहिस्ते चलते चलो। हमारा इंतज़ार नहीं करना। आप भी पीछे रह जाएंगे।" अमरनाथ को आगे निकल जाने के लिए कह कर वह अपनी फूली हुई सांसों को ठीक करने के लिए थोड़ा रुका। अमरनाथ जो लिहाज़ और शर्मवश उनसे थोड़ा आगे चल रहा था, उसकी बात को सुन तेज़ी से चलने लगा।" भाई जी . . . यदि आप नीचे जल्दी पहुंचे और कोई गाड़ी आदि मिले तो हमारे लिए भी सीटें रख लेना। उसकी पत्नी ने अमरनाथ को पुकार कर कहा।" अच्छा. . . आप धीरे धीरे आना। मौसम साफ ही है" अमरनाथ की आवाज़ बर्फीले पहाड़ों से टकरा कर उनके कानों में गूंजी।

अर्चू के भार से रंजना का दम फूलने लगा था। उसके गले की नसें मोटी मोटी उभर आई थी, किसी केंचुए सरीखी। वह दो कदम बढ़ाती फिर खड़ी हो जाती। ऐसी बर्फीली हवा, बर्फ के बीच भी उसके माथे से पसीने की बूंदें टपकने लगी थी। वह स्वयं भी थक गया था। शहर की दूषित हवा और मैदानों की गर्मी उसे अंदर ही अंदर से खा चुके थे। "अम्मा"! रंजना अपनी मां को याद करती हुई बोली, "मैं नहीं चल सकती हूं। अर्चू को आप उठाओ न . . . टांगें लटका कर रखती है। बहुत भारी है। वह निढाल होकर धम से बर्फ के ऊपर बैठ गई। अर्चू को पीठ पर उठाए ही। "भैन जी थोड़ी देर आराम करो। सब ठीक हो जाएगा। आसमान साफ है रास्ता भी ठीक ही है।" उनके साथ चलता साथी युवक बोला। आराम करने के लिहाज़ से वे फिर थौड़ा रुके।

"आप यह गोली खा लो . . . सब ठीक हो जाएगा।

"कैसी गोली है भाई जी? . . . रंजना ने अपनी सांसों को नियंत्रित करते हुए पूछा।

"दमे की है आधी ही खाना। आप की तबियत एकदम ठीक हो जाएगी।"

"मेहरबानी भाई जी। आप का यह एहसान कैसे उतारूंगी? हमारी किस्मत अच्छी है . . . आप जैसे साथी मिले। नहीं तो इस वीराने में कौन किस की मदद करता है। वैसे ठीक भी है न। सब को अपनी जान प्यारी होती है।" रंजना ने दिल से उसका आभार माना।

पहाड़ की चोटियां एक ओर से झुकती जैसी खड़ी थी। दूसरी ओर से देखने पर तन कर खड़ी दिखती थी। दर्रों के बीच बनी छोटी छोटी घाटियां, ग्लेशियर से भरी, बेहोश होकर सो रही थी जैसे। लेकिन जून महीने की दिन भर की धूप और जुलाई अगस्त की बारिश इन्हें जगाए रखती है। सोई हुई घाटी और चट्टानें फिर जाग उठती हैं। लाल पीले नीले चटख फूल धरती की कोख फोड़ कर फूटते हैं। घोड़े खच्चरों के खुरों से रौंदी जाती है बर्फ। बसों, ट्रकों और टैक्सियों के काफिले इन पर पोतते हैं कालिख। सड़क के किनारे की चिकनी, खुरदरी चट्टानों, टीलों, संकरी सड़क की छातियों पर। ये बस डीज़ल, पैट्रोल के धूंए से काली पड़ जाती हैं यही बर्फ, यह सिलसिला चलता कितना है? मुश्किल से चार से छह महीने कुल। फिर होती है यही बर्फ यही पगडंडियां। और फिर शुरू होती है शिखर तक पहुंचने की . . . नीचे उतरने की त्रासद यात्रा।

"अर्चू बेटा। मेरी पीठ पर आओ।"

"चलो अर्चू. . . अब पापा उठाएंगे . . . "रंजना ने बेटी को उसकी पीठ पर देते हुए कहा।

"चलें भाई साब। धीरे–धीरे चलते रहेंगे।" कदम बढ़ाते हुए उसने सहयात्री दंपत्ति से कहा।

"पापा . . . हम कहां जा रहे हैं?

"घर जा रहे हैं बेटा।"

"हमारा घर कहां है पापा" . . .?

" बहुत दूर है बेटा . . . इन पहाड़ों के पीछे . . . बहुत दूर।"

"पापा हम आईस के ऊपर क्यों चल रहे हैं . . . हमारा घर इतनी दूर क्यों है?" अर्चू हैरान और परेशान लग रही थी।

" हां बेटी . . . हमारा घर पहाड़ों के बीच ही है।"

"नहीं . हमारा घर यहां नहीं है, नहीं है . . . हम आगे नहीं जाएंगे"। अर्चू ने रोना शुरू कर दिया था अब ढ़लानदार रास्ता शुरू हो गया था। धीरे–धीरे कदम बढ़ाते वे आगे को चलते जा रहे थे। जो लोग आगे निकल गए थे, उनका दूर दूर तक भी पता नहीं था। अमर नाथ भी नज़रों से ओझल हो चुका था। जहां तक दृष्टि जाती, केवल बर्फ से ढ़के पहाड़ दिख रहे थे। और ऊपर नीला आसमान। "थोड़ा आराम करो भाई जी बैठों भैन जी।" सहयात्री युवक मे एक ऊंची

सी बेंन्च जैसी बन गई जगह फिर बैठते हुए कहा। वे इतने समय से साथ चल रहे थे, पर अभी तक एक दूसरे के नाम नहीं जान पाए थे। अजीब हैं लोग भी। इलाका, गांव सब कुछ पूछ लेंगे लेकिन एक दूसरे का नाम नहीं पूछेंगे। संभवतः शालीनतावश।

"हमारे बुजुर्ग बताते हैं– लाहुल, पांडवों की मां कुंती का मायका था"। आराम के इरादे से जब बैठ गए तो अपने बड़े–बूढ़ों से सुनी एक प्राचीन कहानी सुनाने लगा था वह। "कहते हैं– एक बार माता कुंती अपने पांचों पुत्रों के साथ लाहुल जा रही थी। कठिन चढ़ाई, ऊंचे पहाड़ों पर चढ़ते–चढ़ते माता कुंती थकने लगी थी। चलने में पीछे रहने लगी। पांचों भाई किसी प्रकार उनको कंधे पर उठाए चलते रहे। लेकिन माता कुंती ने देखा कि उसके पुत्र भी थकने लगे हैं तो उस ने अपने आप ही हौले–हौले चलने के लिए उनसे कहा। पांचों भाई मान गए। परंतु वह थकने लगी। चढ़ाई भरे रास्ते पर चढ़ते–चढ़ते। भीम ने देखा कि माता बहुत अधिक थक गई है। उनकी और आगे चलने की हिम्मत नहीं है, तो उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने पहाड़ की छाती पर एक ज़ोर की लात मारी। पहाड़ भीम की लात की मार से सैंकड़ों फुट नीचे जमीन में धंस गया। जहां लात मारी थी, वहां एक घाटी सी बन गई।

भीम ने दूसरी लात मारने के लिए जैसे ही अपने पैर को उठाया तो माता कुंती ने उसे रोक लिया। कहा पुत्र ऐसा नहीं करना, नहीं तो लाहुल सब के लिए खुल जाएगा और चोर, डाकू भर जाएंगे। लाहुल को लूट लेंगे, भ्रष्ट कर लेंगे और कहते हैं तब भीम ने अपने क्रोध को शांत कर लिया था।

"बैठे–बैठे उसने कहानी सुनाई।

"हां भाई जी सभी ऐसा ही बताते हैं लेकिन यदि भीम एक और लात मार देता तो हमारे लोगों के लिए यह मुसीबत तो नहीं होती, क्या यह सच्ची हुई होगी। साथी युवक हास्य मिश्रित गम्भीरता से बोला। दोनों औरतें भी थकान भूल, खिलखिला उठी।

"कुछ न कुछ तो सच्चाई होगी ही। पर क्या ऐसा नहीं लगता मुश्किल रास्तों, पहाड़ों से अपनी तकलीफों, दुःखों को कम करने के लिए हमारे पुरखों ने उस कथा को प्रचारित कर दिया हो। केवल अपने मन को तसल्ली देने, झूठे दिलासे के लिए।"

"आप तो हर बात में नुक्ताचीनी करते हैं यह सच्ची बात है। सभी कहते हैं" रंजना ने उसकी बात को काटते हुए कहा।

आराम करने से कुछ राहत मिली थी परंतु अभी काफी चढ़ाई चढ़नी थी। जम गई बर्फ पर पैर जमाते वे धीरे–धीरे चल रहे थे। वह सोचने लगा, मिट्टी का कहीं नामो–निशान नहीं। हवा में धूल उड़ने का सवाल ही नहीं। फिर बर्फ पर यह धूल, मिटटी की परतें कैसी हैं? शायद धूप लगने से और बर्फ पिघल कर उससे ऐसा हो गया हो। पर उसे अपना ही तर्क गलत लगा। केवल कहीं–कहीं ही चट्टानों की छातियां नंगी नज़र आ रही थीं। जैसे गुफा हो। संभवतः उनकी नंगी

हो गई छातियों पर से बर्फ को या तो हवा ने उड़ा दी थी या ग्लेशियर उन्हें नंगे कर गया था।

"पापा! दर्द हो रहा है।" अर्चू लंबी–लंबी सांसें लेती हुई बोली।

"कहां बेटा, कहां दर्द हो रहा है? परेशान होकर उसने बेटी से पूछा।

"पेट में, पानी पीना है पप्पा, पानी चाहिए।" अर्चू अब रोने लग गई थी।

"बेटा! पानी तो नहीं है। बर्फ खाएगी? नहीं नहीं टॉफी खाएगी? उसने अपने दस्ताने पहने हाथों से जेब से टॉफी निकाल कर अर्चू को देने के लिए पत्नी की ओर बढ़ाया।" नहीं, पानी पीना है पानी। "वह ज़ोर–ज़ोर से रोने लग गई थी।" रोना नहीं बेटा। पानी आगे मिलेगा थोड़ी ही देर में हम ऊपर चोटी पर पहुंच जाएंगे फिर पानी पीना।" साथ चल रही औरत ने अर्चू को पुचकार कर कहा लेकिन अर्चू उसकी पीठ पर अपने दोनों पैर पटक–पटक कर मारते हुए रोने लगी।

ऊपर टॉप पर पहुंचने पर भी पानी का नामोनिशान नहीं था। केवल बर्फ थी और थे बर्फ के तोंदे। अब चढ़ाई खत्म हो गई थी। ढ़लानदार पहाड़ पर सांप की तरह का टेढ़ा मेढ़ा रास्ता नज़र आ रहा था। "बेटा अभी हम नीचे पहुंच जाएंगे फिर तुम पानी पीना, चाय पीना। ठीक है" "नहीं हम आगे नहीं जाएंगे पीछे चलो पप्पा हमारा घर आगे नहीं है, पीछे चलो। ऊं ऊं "रोते हुए और टांगे पूर्ववत! उसकी पीठ पर धड़धड़ाते हुए अर्चू अब और भी अधिक लंबी–लंबी सांसे लेने लगी थी।

"उल्टी आ रही पप्पा . . ."

"बेटा। उल्टी आ रही है तो सिर थोड़ा बाहर की ओर निकाल कर उल्टी कर दे। . . . रंजना के मुंह से अब रुलाई फूटने को थी।

अर्चू ने तीन चार बार मुंह फाड़ फाड़ कर उल्टी कर दी। पीला पानी बाहर निकला। फिर पीले धब्बे छोड़ता बर्फ में जज़्ब हो गया।

"हे शिव जी। दया करो। हमारे बच्चे की तबीयत ठीक कर दो भगवान।" रंजना भर्राए स्वर में भगवान शिव से प्रार्थना करने लगी। "अर्चू। और उल्टी आ रही है बेटी।" अपने स्कार्फ से बेटी का मुंह साफ करते हुए रंजना ने पूछा।

"नहीं मम्मी सिर में दर्द हो रहा है।"अर्चू ने निढ़ाल होकर सुस्ती से जवाब दिया। उसका फूल जैसा मुख असहजता और दर्द से पीला पड़ गया था। उसका पैर पटकना बंद हो गया था और पानी मांगना भी।

"चलो रंजना आहिस्ते–आहिस्ते चलते रहेंगे नहीं तो बहुत टाईम लग जाएगा। छाते को ठीक से पकड़ टिका–टिका कर चलना।" एक समय में एक ही आदमी चलने लायक बर्फ पर पैरों के निशान से बन गए रास्ते पर संभल–संभल कर चलते हुए उसने पत्नी से कहा। यदि थोड़ा सा फिसले तो कई सौ फुट नीचे लुढ़कने का डर मन ही मन सताने लगा। इसी बीच साथ चल रहे मियां–बीबी भी काफी आगे निकल गए थे।

वह सोचने लगा, यहां जीवन कितना कठिन है। कितनी बार इन पर्वतों पर चढ़ते हैं उतरते हैं। बर्फीली हवाओं के थपेड़े खाते हैं, घुटनों तक बर्फ में धंसते, बर्फ में रास्ते बना बना कर चलते हैं। घर पहुंचते, और घर से बाहर जाते हैं। कभी–कभी कुछ तो बर्फ की तहों में सो जाते हैं सदा के लिए। लेकिन इन्हें कौन जानता है? कौन सोचता है इनके बारे में कि ये लोग कितनी बार माउंट ऐवरेस्ट पर चढ़ते हैं। कंचन जंगा, नंदा देवी पर चढ़ते हैं उतरते हैं क्या यह किसी कंचन जंगा, किसी माउंट ऐवरेस्ट से कम है? माउंट ऐवरेस्ट पर चढ़ने वाला दुनियां का हीरो बन जाता है। थोड़ा सा सिर दर्द हो तो समाचार बन जाता है लेकिन यहां के लोग क्या हैं? उपेक्षित और लाचार, पर अदम्य साहस के धनी, जुझारू। वरना! उसने रोहतांग में ही कहीं पढ़ा था, ग्रिफ वालों का लिखा हुआ, फॉर टूरिस्टस एंड पीपल, रोहतांग मे बीएन एडवेंचर–बट फॉर अस, इट इज़ ए चेलेंज।'' कितना सही लिखा है उन्होंने। यह बात उन पर ही नहीं, यहां के लोगों पर भी कितना सटीक बैठता है।

छाता पकड़े पकड़े उसकी पत्नी लड़खड़ाई तो उसका सोचना रुका। अब उतराई शुरू हो गई थी। वे एक एक कदम को बढ़ाते आगे की ओर चलते जा रहे थे। अर्चू पीठ में ही सो गई थी। उल्टी कर चुकने के बाद उसे कुछ आराम हो गया था। सहयात्री दम्पत्ति ऐंठी उलझी रस्सी की तरह के रास्ते में दो काले बिंदु जैसे नज़र आ रहे थे, दूर नीचे। सांप की खोल के समान रास्ता बहुत दूर नीचे टीलों के बीच में लुप्त हो गया था और घर पहुंचने के लिए, उन्हें उस खोल को तलाश करते–करते चलते ही जाना था।

साहिबा : बाज़ार व्यवस्था से प्रभावित या फिर नए जेन्रे (genre) का पदार्पण

साहिबा : ऑडियो कैसेट को सुनने पर घुरे कर्णप्रिय लगे लेकिन संगीत का स्तर मध्यम होने से इन ऐतिहासिक कलासिकल बोलों के साथ अन्याय सा हुआ लगता है। वारे बोलुंदा तांदी रा कोठी कृकृकृ घुरे में नोमेडिक गददियों के बालाड को कर्णप्रिय होने के बावजूद संगीत में कुल्लवी प्रयोगात्मक पहलू इसके साथ न्याय नहीं कर पाई है। अजु ए री दीवा कुलूए री लाड़ी कृकृ एक दर्द भरा कलासिकल घुरे है जहां एक अबला प्रसव पीड़ा के चलते अनेक द्वन्द्वों से गुज़र रही है। इस घुरे के साहित्यिक इतिहास में झांकें तो इसमें ईर्ष्यावश भ्रूण हस्तांतरण का भय भी पैदा होता है। ऐसे द्वन्द्वों को गायकों के सुरीला होने के उपरान्त भी गायक इसके अन्दर छुपे हुए दर्द को उभार नहीं पाया। जहां तक संगीत की बात है तो बाहरी संगीतकार लाहुली मानस के द्वन्द्वों के साथ न्याय नहीं कर पाएगा।

धामे –धामे और ग्रावें हिवें री सेरी कृकृकृकृ घुरे में निचले पटन के विदाई विवाह गीत का वर्णन है जिसे फिर संगीतकार समझ पाने में असफल रहा तथा ग्रावें हिवें री सेरी में देव अवतरण की पवित्रता, जिज्ञासा व मन को स्पर्श करने वाले बोलों को संगीत में ढ़ालने में फिर चूक हो गई है। यह भी तब हो रहा है जब बोल लगभग चम्बयाली व कुल्वी के नज़दीक है। मैं समझ सकता हूं यहां के परिवेश, द्वन्द्वों और भौगोलिक परिस्थितियों से उपजा गहरे अंतस में बैठे भीतरी डर के एहसास को गैर लाहुली संगीतकार नहीं समझ पाएगा। फिर कब अपना संगीतकार अपनी धरती के गीतों को लेकर आएगा?

यहां पर समीक्षा की टिप्पणियां इस कैसेट के बनाने वालों के प्रयास को कम करके नहीं आंक रही है बल्कि यह हर्ष का विषय है कि इन प्रयासों से पुराने लुप्त हो रहे घुरे फिर नई पीढ़ी की जुबां पर आ जाएंगे। साथ में महेन्द्र ठाकुर को उसके कर्णप्रिय आवाज़ के लिए साधुवाद व सुश्री नीरू चांदनी को इस प्रयास के लिए बधाई।

**** अच्छा, खरीदने योग्य।* *घरसंगी*

वो सुबह कभी तो आएगी

स्नेह लता 'सीमा'

सभी ज़ोर–ज़ोर से ठहाके लगा रहे थे मगर मैं उन ठहाकों से दूर न जाने कहां खोई हुई थी मन ही मन मैंने वहां से जाने का निर्णय लिया . . . . मगर ये खयाल था कि अभी एक क्लास और है, मगर नहीं जब मैंने मन बना लिया तो वहां से उठकर होस्टल का रुख किया . . . निशा को कह दिया कि मेरी तबीयत ठीक नहीं है।

हॉस्टल पहुंचते ही क्या देखती हूं कमरे की चाबी नहीं है . . . मन में कई खयाल एक साथ उमड़ आए। लड़कियों से पूछने पर पता चला कि कोई लड़की है। कमरे तक पहुंचते–पहुंचते न जाने किस–किस के बारे में नहीं सोचा . ये होगी, वो होगी खैर, कमरे में प्रवेश करते हुए देखा सामान अस्त–व्यस्त पड़ा है अलमारी के पीछे कोई है कौन है जैसे ही मैंने झांका, तो खुशी का ठिकाना न रहा वो अनुपमा थी बहुत खुशी हुई उसे देखकर। अरे अनु तू यहां कैसे? न फोन किया न पत्र लिखा। कम से कम पता कर देती, मैं बस स्टैंड लेने आ जाती। उसे देखकर क्षण भर के लिए तो मैं सब कुछ भूल गई।

मैंने हीटर पर चाय रखी, वो फ्रैश होने चली गई। कमरे को थोड़ा सा ठीक किया। चाय के बनते ही वो आ गई। उसने मुझसे पूछा, तू उदास सी लग रही है, क्या बात है?

हां अनु, अच्छा हुआ तुम आ गईं, आज मन कुछ ज़्यादा ही उदास हो रहा था।

अनु ने पूछा क्यों क्या बात है?

वो कल ही की बात है, मैं क्लास लगाकर हॉस्टल लौटी तो चाय पीने का बड़ा मन हो रहा था। मैंने निशा से कहा, चाय पीते हैं? निशा ने कहा कि चीनी खत्म हो गई है, यहां तो बन नहीं पाएगी, चलो कैंटीन चलकर पीते हैं। हम दोनों उसी वक्त निकल पड़े। कैंटीन की तरफ तभी दूर से नारों की आवाज़ आई, पता चला कि स्टूडैंटस अपनी कुछ मांगों को लेकर आफिस की तरफ जा रहे हैं। खैर हम कैंटीन पहुंच गए वहां पहले से ही एक छात्र संगठन के कुछ लोग बैठे हुए थे . हम भी उनमें शामिल हो गए वे सब बड़े–बड़े इशूज़ पर बात कर रहे थे। इतने में एक आठ नौ साल का बच्चा वहां आया। रंग गोरा, मैल से काला पड़ गया था। कैंटीन वाले से काम मांगने लगा। कह रहा था बाबू जी कोई काम दे दो। मैं दो दिन से भूखा हूं, कोई काम नहीं देता, कहते हैं अभी तू छोटा है हमारे किसी काम का नहीं, दो तीन साल बाद आना। लेकिन बाबूजी आप ही बताइए मैं इन दो तीन सालों तक कहां रहूं क्या करूं? मां मर गई है, बापू ने दूसरी शादी कर ली, घर से बाहर कर दिया है

हम सब ये देख रहे थे और देखते ही देखते बड़े बड़े स्टूडैंट लीडर और वहां बैठे दूसरे छात्र बाल मज़दूरी, शोषण पर अपने–अपने विचार रखने लगे, गरीबी, जनसंख्या, विस्फोट पर नए–नए आंकड़े रखने लगे। लगता था इस डिस्कशन में एक दूसरे से सभी प्रतिस्पर्धा सी कर रहे थे, हम भी उन्हीं का एक हिस्सा हो गए, और बहस इतनी हावी हो गई कि इस बीच उस बच्चे का ध्यान ही नहीं रहा। न मालूम वह कहां गया? उसके बाद उसने क्या किया? उसका क्या हुआ? बातों–बातों में समय का पता नहीं चला वहां अंधेरा हो चुका था इसलिए हॉस्टल वापस आ गए।

बस तभी से मन उदास सा है क्या हम सिर्फ बातें ही करते रहेंगे? इन समस्याओं को बहस में एक दूसरे से जीतने के लिए बस, मानो एक टॉपिक बनाकर छोड़ देंगे। क्या अपने आपको शिक्षित और समझदार बनने और दिखने का मात्र नाटक करते रहेंगे। देखो न अनु, कल हम सभी ने क्या किया? उस बच्चे का क्या करना चाहिए ये किसी को खयाल नहीं आया लेकिन ये खयाल मुझे रात भर कचोटता रहा हम सब अपनी आत्माओं में झूठ लेकर क्यों जी रहे हैं?

खैर, उस दिन कुछ मैंने अपनी सुनाई कुछ उसने, बातों–बातों में रात बीत गई, सुबह उसे लौटना था। सुबह के सात बज चुके हैं सूरज की पहली किरण ने ही मुझे जगा दिया और यूं लगा मानो सूरज की पहली किरण ने ही मेरे अंदर की कालिमा को मिटाना चाहा हो और कह रही हो कि मैं भी तो लम्बे और सुनसान रास्तों को पार करके यहां तक पहुंची हूं, तुम्हें भी लम्बे और सुनसान राहों से गुज़रना है। मगर अंधेरों के बाद वह सुबह ज़रूर आएगी। जाने क्यों आज मन में कुछ नई आशा नया उत्साह सा अनुभव कर रही थी। खैर फिलहाल तो अनु को बस स्टैण्ड तक छोड़ने जाना था। जल्दी जल्दी तैयार हो कर हम निकल पडीं, उसे अलविदा कह कर मैं हॉस्टल की तरफ मुड़ ही रही थी कि क्या देखती हूं वही बच्चा कैण्टीन वाले अंकल के बच्चों के साथ स्कूल जा रहा है हैरान सी होकर मैंने अंकल से पूछा, उन्होंने बताया कि, हां कल ये काम मांगने आया था, मैंने उसे रख लिया है जहां मेरे दो बच्चे पल रहे हैं वहां तीन हो जाएंगे आज दाखिला करवाने जा रहा हूं मेरे बच्चों की तरह वह भी काम में सहयोग दे देगा उसको रहने का ठिकाना मिल जाएगा ।

हतप्रभ सी खड़ी में अनायास बेहद बौना महसूस करने लगी कहां पढ़ा लिखा तथाकथित शिक्षित वर्ग, कहां निम्न मध्यवर्गीय परिवार का शख्स जो कभी बहस करते नहीं दिखते, मगर जो कर रहे हैं वो बेकार की अर्थहीन बहस से कितना अधिक ऊंचा है!

चकित सी मैं खड़ी, मन में एक साथ खुशी, आशा, विश्वास के असंख्य भाव अनायास उमड़ने घुमड़ने लगे। साथ ही साथ मिली एक ऐसी राह की प्रेरणा। इस नई मंज़िल की शुरुआत कैण्टीन से होगी मैंने कभी नहीं सोचा था। मन ही मन मैंने स्वयं को दृढ़ किया कि अब मैं आत्मा में झूट लेकर नहीं जिऊंगी। सच्चे आदर्शों पर चलने का प्रयास करूंगी।

मुझे एक गीत याद आ रहा था –
वो सुबह कभी तो आएगी
इन काली सदियों से जब
रात का आंचल ढलकेगा
जब दुःख के बादल पिघलेंगे
जब सुखका सागर छलकेगा।

प्रवक्ता, राजकीय महाविद्यालय
बंजार।

कसौटी

लाहुल एवं स्पीति में रन–ऑफ–द रिवर जल विद्युत परियोजनाएं और इनसे उपजने वाले सम्भावित इम्पैक्ट व इनके समाधान की आवश्यकता।

भारत वर्ष की केन्द्र व राज्य सरकार की विद्युत नीति के अन्तर्गत जैसे भी जहां भी जल विद्युत उत्पादन की सम्भावना है उसका दोहन करना है ताकि भविष्य में भारत ऊर्जा सम्पन्न राष्ट्र बन सके। इसी के अन्तर्गत लाहुल में लगभग 1850 मैगा वाट के दोहन उत्पादन की सम्भावना व्यक्त की है और इसी प्रकार स्पीति में लगभग 500–1000 मैगा वाट दोहन की क्षमता आंकी गई है। इस तरह लाहुल में ही लगभग 1850 गुणा 6=11100 करोड़ रुपए का निवेश होना है। जब किसी भी स्थान पर इतने व्यापक स्तर पर निवेश होता है तो वहां की सामाजिक, आर्थिक स्थिति व पर्यावरण पर गहरा असर पड़ता है। इस तरह के प्रोजेक्ट जहां पर स्थापित हैं वहां अगर देखा जाए तो इससे स्थानीय लोगों की हर स्तर पर हानि ही हुई है। फिर बात यह उठेगी कि इस तरह के प्रोजेक्ट क्यों?

व्यक्तिगत तौर पर मेरा मानना है कि राष्ट्र हित के लिए हमें इन परियोजनाओं को स्वीकार करना पड़ेगा। लेकिन इनसे होने वाले जो आर्थिक, सामाजिक स्थिति, पर्यावरण और पारस्थितिकी असुन्तलन है उसके प्रति अभी से सजग होकर इनसे निपटने की तैयारी करनी पड़ेगी। अब बात यह उठेगी कि पहले ही इसका कैसे पता चलेगा? इसको जानने के लिए हमें उतरांचल टीहरी बांध, चम्बा में बैरा–स्यूल तथा किन्नौर की विभिन्न जल परियोजनों का आकलन करते हुए इनका स्थानीय लोगों के आर्थिक, सामाजिक स्थिति, पर्यावरण पर प्रभाव व पारस्थितिक असुन्तलन को जांचना होगा। इस प्रकार हम अपनी वादी को राष्ट्र हित हेतु समर्पित करते हुए इससे आर्थिक लाभ प्राप्त करने के साथ–2 सामाजिक व पर्यावरण पर इसके नुकसान का वैज्ञानिक विश्लेषण कर इसके प्रभाव को कम कर सकेंगे। अक्सर कहीं भी इस तरह के प्रोजेक्ट आते हैं तो यह तर्क दिया जाता है कि इससे उस स्थान के बेरोज़गार युवकों को नौकरी, ज़मीन की अच्छी कीमतें और सरकार को भरपूर आय अर्जित होगी। यह सही है लेकिन नौकरी किस प्रकार की? क्या लाहुल में इन्जींनियरज़ की भरमार है, क्या लाहुली इन प्रोजेक्टस से सम्बन्धित डिगरी, डिप्लोमा व एक्सपीरियंस से लैस है? नहीं। हां, निचले स्तर की नौकरी मिल सकती है, वह भी सिर्फ 4–6 साल तक और उसके बाद जहां तक परियोजना के सिविल कार्य की बात है तो हमारे पास अभी इस स्तर के कितने ठेकेदार हैं, जिन्हें सीधा ठेका मिले? इन्हें कार्य मिलेगा लेकिन जॉव वर्क के रूप में। और इसमें भी बहुत सारे दूसरे कार्य हैं जैसे लोहे के फेबरीकेशन, अन्य आवश्यक सामग्री, बजरी–रेत सप्लाई और प्रोजेक्ट से सम्बधित लोगों को रिहाइश होटल व भोजन इत्यादि। ऐसे कितने पहलू हैं जिनसे निपटना होगा और हर स्तर पर अपनी क्षमता बढ़ानी होगी।

सामाजिक संस्थाओं में भी इसका प्रभाव प्रतिकूल ही रहता है। इस प्रोजेक्ट से विस्थापन, ज़मीन से वंचित होना, एक दम पैसा आने से निठल्लापन, आपसी वैमनस्य, निरंकुशता, अहंकार, उपभोग की वस्तुओं को पाने की प्रतिस्पर्धा, सामाजिक मूल्यों में गिरावट, बाहरी तत्वों के आने से सामाजिक स्तर पर असुरक्षा की भावना और कितने ही ऐसे विषय हैं जो निश्चय ही प्रभावित होंगे और यह प्रहार 4–10 साल तक चलता रहेगा और उसके बाद?

इसी प्रकार रन–ऑफ–द–रिवर परियोजनाओं से चन्द्रभागा के दोनों तरफ के तट पर इसका गहरा असर पड़ेगा। दोनों तटों पर डेम, सड़क व टनल बनने से वहां स्थिति असंतुलित हो जाएगी जिससे ऊपर के गांवों के खेतों के भूस्खलन होने की संभावनाएं बढ़ जाएंगी। प्रदूषण से फसलों पर गहरा असर पड़ेगा तथा मनुष्य और जानवर भी इससे जनित रोगों से ग्रस्त हो सकते हैं। चंद्रभागा की तलहटी में उपजने वाली कई वानस्पतिक प्रजातियां विलुप्त हो जाएंगी। लाखों सालों से प्रकृति द्वारा रचित चंद्रभागा के दोनों तट 4–10 साल में कुरूप हो जाएंगे।

पिछले चार दशकों से वैसे ही लाहुल समाज तीव्र गति से पुनर्संरचना, ऐच्छिक विस्थापन, क्षेत्रीय बोलियों के खोने का दंश, संयुक्त परिवार के बिखराव को झेल रहा है और उस पर आने वाले अगले 4–10 साल में एक और भीषण तिहरा प्रहार होने वाला है। क्या हम इसके लिए तैयार हैं? कहां बैठे हैं सेल्फ प्रोकलेम्ड लाहुली बुद्धिजीवी और अपनी लियाकत और प्रबंधन कौशल का बखान करने वाले? क्या लाहुली चित्रकार और कवि भविष्य में इसकी सुन्दरता को उकेर पाएगा? युवा पीढ़ी जिसके कन्धों पर लाहुल का सुनहरा भविष्य टिका है आज उसमें युवावस्था का वह जज़्बा और अदम्य ऊर्जा कहीं नज़र नहीं आती है। क्या इनकी चिन्तन व मनन करने की क्षमता बेरोज़गारी के बोझ तले दब गई है या फिर नौकरी की तलाश में कुंद पड़ गई है। युवा पीढ़ी को इन अवश्यमभावी चुनौतियों को भली प्रकार समझ कर इन का सामना करने के लिए डट कर सामने आना होगा।

उपरोक्त परियोजनाओं का प्रभाव लाहुल के एक कोने में न होकर छतडू से रोहली तक थान पटटन से उदयपुर तक और जिस्पा से तांदी तक सब ओर रहेगा। इस लिए इस विषय पर चिन्तन और इसके प्रभाव से कम से कम प्रभावित हों इस ओर यत्न करना पड़ेगा। क्योंकि राष्ट्र हित में परियोजनाएं लगेंगी, इसका विरोध करना वाजिब नहीं होगा, लेकिन इससे उपजने वाले दुष्टप्रभावों को काफी कम किया जा सकता है अगर हम पूरे इलाके के स्तर पर कुछ निर्णय लें, इससे प्राप्त होने वाले आर्थिक लाभों को दोहने की क्षमता बढ़ाएं, पर्यावरण Audit और परियोजनाओं से प्राप्त पर्यावरण दुष्टप्रभाव शुल्क को वैज्ञानिक रूप से पर्यावरण संरक्षण में इस्तेमाल करें। उन सभी ऐजेंसियों पर पैनी नज़र रखी जाए जो इसका इस्तेमाल करेंगी। हमें अपने व्यक्तित्व को सुदृढ बनाना पड़ेगा, हर कोई हमारे ज़मीर को खरीदना चाहेगा, व्यक्तिगत लाभ, सामाजिक स्तर के लाभ पर भारी न पड़े, तब कहीं इस कठिनाई से निपटने की सोच सकते हैं। कौन करेगा यह सब? कुल्लू में बैठे लाहुली बुद्धिजीवी? या फिर लाहुल में रहने वाले किसान?

वरदान याचना करने का गीत

के• अंगरूप लाहुली

लाहुल वादी धर्मभूमि है, कर्मभूमि है तथा पर्वभूमि है। इस अनुपम वादी में बौद्ध और सनातनी हिन्दू परिवारों का निवास स्थान है। यहां पर तीज–त्यौहार बड़े उल्लास के साथ मनाए जाते हैं। लोग पूजा–अर्चना और मांग–मनौतियां आदि अपनी सुख–समद्धि की अभिवाद्धि और अनिष्टों के निवारणार्थ किया करते हैं। यहां के निवासियों में धन–सम्पत्ति संग्रह करने की असीम लालसा देखी जा सकती है। अतः वे दिन–रात अथक परिश्रम करते हैं। नाना कामनाओं सहित विविध आशा और आकांक्षाओं के बलबूते पर जीवन जीने का प्रयास करते हैं। वे अपनी इन आकांक्षाओं में योगदान के लिए सुरासुरों से भी सहयोग और वरदान की याचना किया करते हैं। प्रकाश–पर्व (हलडा) के अवसर पर धनी हो या निर्धन सभी परिवार अपने–अपने इष्ट देवों और देवियों से विभिन्न वरदान की याचना करते हैं।

सुखी जीवन जीने तथा धन–सम्पत्ति की अभिवद्धि के निमित्त मनुष्य अपनी समस्याओं का निराकरण करने में असहाय रहता है तभी उसे किसी चमत्कार की अपेक्षा करनी पड़ती है और अदश्य शक्तियों से वरदान की याचना करनी पड़ती है। कारण, जीवन बीज के लिए वरदान/सूरज, वायु और जल की भांति उपादान स्परूप होता है। वरदान देवी–देवताओं से ही मांगी जाती है, प्रत्येक देवी–देवता का अपना–अपना महत्त्व होता है। पर लक्ष्मी देवी की इसी लिए महानता है कि उनकी पूजा और अराधना से रंक से राजा होने में देरी नहीं लगती। यह देवी धन–सम्पत्ति तथा ऐश्वर्य का प्रतीक है। पुराण और उपनिषद आदि में कहीं–कहीं पर इन्हें केवल 'श्री' शब्द से अभिव्यक्त किया गया है। अतः लोग धन–सम्पत्ति की लालसा में इन्हीं देवी की अराधना किया करते हैं। नव वर्ष के आगमन पर लाहुल की गाहर वादी में शिस्कार–अपा (श्री दादी मां) की और पटनवादी में घरश्री देवी बनाम लक्ष्मी देवी की पूजा–अर्चना और वरदान याचना करने की परम्परा प्रचलित है।

पटनवादी समाज में वरदान याचना करने की विधि संगीतमय स्वरों में प्रार्थना की जाती है, जबकि गाहर आदि अन्य वादियों में गद्य रूप में राजा घेपन लाहुल के एक प्रमुख देवता हैं। उनका गुर यानि पुजारी प्रायः एक अनपढ़ ठेठ ग्रामीण जन होता है। उनका वेद मंत्रों से दूर का भी सम्बन्ध नहीं होता, परंतु वह अपनी स्थानीय बोली में वेद मंत्रों से अभिन्न स्वरों में पूजा–अर्चना करता है।

लाहुल की दो विभिन्न वादियों की वरदान याचना करने के दो विविध रूप एवं रूपान्तर निम्न प्रकार से हैं :–

पहला गाहरवादी की वरदान याचना

छोद्–छोद्

1 ट–शिस मी–यी बरा चोद्–क्यु।
2 यड• कर म–मो य–सोचन–गी बरा चोद्–क्यु।
3 सेर–गी क–यी बरा चोद् क्यु।
4 डु•ल –गी दुड•–मइ बरा चोद्–क्यु।

5 यु–यी चि़ग–पइ बरा चोद्–क्यु।

6 हरा–मु–तिग–गी बरा चोद्–क्यु।

7 तुका–पो–शेल–गी बरा चोद्–क्यु।

8 की–लिड•–ता रचो–चन–गी बरा चोद्–क्यु।

9 तरा–गड• ताइ बरा चोद्–क्यु।

10 लुग–रा–गड• लुग–गी बरा चोद्–क्यु।

11 अन्न–रा–ज़इ बरा चोद्–क्यु।

12 धन–रा–ज़इ बरा चोद्–क्यु।

विकल्प से–

1 लुगु–डोमो यसो–चन गी बरा चोद्–क्यु।

2 कि–लिड• तइ बरा चोद्–क्यु।

3 थड•–बिड• बुर गी बरा चोद्–क्यु।

4 क्युम–बिड• मिइ बरा चोद्–क्यु।

शिस–कर ल्हमो! चु–ञिस लहग मर–मर ज़द दड• छुजा ग्वां–खेग्।

शिस–कर ल्महो। हन–दोग सोल–तड• रजी।

शिस–कर ल्हमो! हिड•–जोग ज़तड•–तुड•–तड• रजी।

छोद्

अनुवाद

1 मंगलमय मानव का वरदान दीजिए।

2 ऊपरी दांतों वाला शुभंकर मेमना का वरदान दीजिए।

3 स्वर्ण स्तंभ का वरदान दीजिए।

4 रजत के शहतीर का वरदान दीजिए।

5 फिरोज़े की दीवार का वरदान दीजिए।

6 हीरा और मोती का वरदान दीजिए।

7 मूंगा और पुखराज का वरदान दीजिए।

8 सींग वाला गिलिड्• अश्व का वरदान दीजिए।

9 घुड़सवाल भर घोड़ों का वरदान दीजिए।

10 भेड़शाला भर भेड़ों का वरदान दीजिए।

11 अन्न राज का वरदान दीजिए।

12 धन राज का वरदान दीजिए।

हे! श्रीकर देवी, बारह माह में हम आप की मर–मर ज़द के साथ अगवानी करेंगे।

हे! श्रीकर देवी, आप को नैवेद्य की प्राप्ति हो।

हे! श्रीकर देवी, हम लोगों को खान–पान की प्राप्ति हो।

आराध्य!

विकल्प का अनुवाद –

1 ऊपरी दांतों वाला मेमना का वरदान दीजिए।
2 गिलिड. अश्व (उच्चैः श्रवा) का वरदान दीजिए।
3 खेत भर बालियों का वरदान दीजिए।
4 गष्ह भर मानवों का वरदान दीजिए।

वाचक –
मेरी पुत्र वधू शेरब डोलमा।
संकलन किया–21 जून सन 2000
स्थान – उपासक सदन, केलंग, लाहुल।

दूसरा पटनवादी की वरदान याचना

1 बड़ी दानु तीयारा, चौंबे मुखे चोका जे।
2 बड़ी दानु तीयारा, ऊठा–हाथी वार देओ।
3 बड़ी दानु तीयारा, सोना–चांदी वार देओ।
4 बड़ी दानु तीयारा, ताम्बा–कांसा वार देओ।
5 बड़ी दानु तीयारा, मूंगा–मोती वार देओ।
6 बड़ी दानु तीयारा, आना–दाना वार देओ।
7 बड़ी दानु तीयारा, सारा–सूरे वार देओ।
8 बड़ी दानु तीयारा, भेड़ा बकुड़ी वार देओ।

अनुवाद

1 हे! बड़े दान प्रिय (आप हमें) चारों ओर से विशुद्ध (वरदान) दें।
2 हे! बड़े दान प्रिय (आप हमें) ऊंट और हाथियों का वरदान दें।
3 हे! बड़े दान प्रिय (आप हमें) सोना और चांदी का वरदान दें।
4 हे! बड़े दान प्रिय (आप हमें) तांबा और कांसे का वरदान दें।
5 हे! बड़े दान प्रिय (आप हमें) मूंगा और मोतियों का वरदान दें।
6 हे! बड़े दान प्रिय (आप हमें) अन्न और दाने का वरदान दें।
7 हे! बड़े दान प्रिय (आप हमें) शराब और मदिरा का वरदान दें।
8 हे! बड़े दान प्रिय (आप हमें) भेड़ और बकरियों का वरदान दें।

गवैया–मास्टर लाल चन्द, शासनी।
गांव–तान्दी, रिकार्डिंग–जून 1974

संकलन कर्ता एवं अनुवादक – के॰ अंगरूप लाहुली
मौर्य निकेतन, दशाल, कुल्लू।

रिश्तों का घाल मेल

–सतीश कुमार लोप्पा

प्रत्येक समाज में पारिवारिक सम्बन्धों के नाम तथा तदनुरूप सम्बोधन की व्यवस्था परम्परा से की गई है, जैसे – माता, पिता, भैया, दीदी, भाभी आदि आदि। लाहुली समाज में भी ऐसी ही परम्परा मौजूद है। पटन घाटी में निवास करने वाले लोगों में इधर कुछ नए सम्बोधन भी अस्तित्व में आए हैं। उदाहरण के लिए सास और ससुर के लिए क्रमशः 'अने' (बुआ) तथा म्हमा (मामा) कह कर पुकारने का चलन प्राचीन काल से तो नहीं, फिर भी काफी समय से चला आ रहा है। (प्राचीन काल में सीधा सम्बोधन वर्जित था) गाहर घाटी में भी बुआ–मामा का चलन है। लेकिन हाल के कुछ वर्षों में देखा गया है कि अनेक बहुएं अपने सास–ससुर को बुआ और मामा न कह कर माता एवं पिता कह कर सम्बोधित करने लगी हैं। यह सम्बोधन लाहुली मूल्यों के साथ मेल नहीं खाता। क्योंकि सास–ससुर को माता–पिता कहने से उनका पुत्र यानि कि 'पति' तकनीकी तौर पर 'भाई' बन जाता है। यह तर्क का तकाज़ा है। दूसरी ओर कुछ लोग दादी (अपअ) को मां) याह्) कह कर पुकारने लगे हैं। यह परिवर्तन तब अस्तित्व में आया जब 'मम्मी' ने लाहुल में पदार्पण किया। मां 'मम्मी' बन गई और दादी 'मां' बन गई। (शायद उत्तर आधुनिकता इसे ही कहते होंगे) अब यदि कोई दादी को मां कहे तो स्वभावतः उसका पिता उस तथाकथित 'मां' का 'पति' बन जाता है जबकि वह उसका बेटा होता है। इस प्रकार ऐसे सम्बोधन अपने लिए गाली के समान बन जाते हैं। अतः अपनाने योग्य नहीं जान पड़ते। अने, म्हमा और अपअ में क्या समस्या है, जो एक नए सम्बोधन की आवश्यकता आन पड़ी?

इसी प्रकार की एक और समस्या पति के बड़े भाइयों तथा बड़ी बहनों के लिए सम्बोधन को ले कर है। कुछ समय से पति के बड़े भाइयों को भाई (कक:) तथा बड़ी बहनों को दीदी (अछे/अपु:) कह कर पुकारने का चलन आरम्भ हो गया है। इन सम्बोधनों का भी पूर्वोक्त की तरह वही तार्किक अन्त सामने आता है। भाई का भाई–'भाई' तथा दीदी की बहन–'बहन'। बड़े–बूढ़े तो इन्हें भी गाली ही मानते हैं। लेकिन इस मामले में एक बड़ा अन्तर है। वह यह कि पटन में पति के बड़े भाई यानि जेठ के लिए परम्परा से कोई सम्बोधन वाचक शब्द प्रचलित ही नहीं हैं। इस का कारण यह है कि पुराने समय में यहां 'सांझा पत्नी–प्रथा' का चलन था, इस व्यवस्था में सभी भाई समान रूप से पति ही होते थे। तो 'ए–ओ' से ही काम चला लेते थे। आज स्थितियां बहुत बदल चुकी हैं। अतः जेठ नाम का रिश्ता अस्तित्व में आया और उस के लिए एक अदद उपयुक्त सम्बोधन को भी अस्तित्व में आना ही चाहिए। बड़े–बूढ़ों के मौन के कारण नव–वधुओं ने अपनी सुविधा के लिए एक अदद सम्बोधन वाचक शब्द ग्रहण कर लिया। पति ने भाई कहा तो उन्होंने भी भाई कह दिया। इस विषय में उन को दोष नहीं दिया जा सकता। अब वे बेचारियां 'ए'–'ओ' कह कर थोड़े ही बुलाएंगी। बड़े–बूढ़ों को इस संदर्भ में शीघ्र ही कोई उपयुक्त सम्बोधन सुझाना होगा। अन्यथा भाई तो 'भाई' बना बनाया है ही।

इसी स्वभाव की सम्बोधन की समस्या जीजा, पत्नी की बड़ी बहन एवं बड़े भाई के संदर्भ में भी पेश आती है। साला, जीजा, बहनोई के आपसी रिश्ते का नाम तो मौजूद है– दिग्स/दी:स।

लेकिन इसको सम्बोधन के रूप में प्रयोग करने का वैसा चलन नहीं है खासकर पटन के बौद्ध समुदाय में। जब कि गाहरी समाज में ऐसे ही शब्द सम्बोधन के रूप में पूर्णतः प्रचलित हैं। जो अच्छे भी लगते हैं। (वहां उपरोक्त परिवर्तनों की कोई सूचना नहीं हैं।) किन्तु यहां एक अजीब लेकिन दिलचस्प स्थिति देखने को मिलती हैं। पटन में जहां 'दिग्स/दीःस' जीजा, साला, बहनोई के लिए प्रयुक्त किया जाता है, वहीं गाहर में 'दिग्सग्' शब्द भाभी के लिए। पटन में जहां 'छ़मो भाभी के लिए प्रयुक्त होता है, वहीं गाहर में 'छ़ऊ' शब्द जीजा, साला, बहनोई के लिए। मतलब सब 'उल्टा–सुल्टा।

ऊपर जिन नए सम्बोधनों की चर्चा की गई है, वास्तव में वे मैदानी समाजों से नकल की प्रवत्ति के वशीभूत होकर और छद्म आधुनिकता के प्रभाव के चलते आंखें मूंद कर आयात की गई हैं जो लाहुली संस्कति एवं मूल्यों के विपरीत जाती प्रतीत होती हैं। ऐसे अन्धानुकरण से बचने की ज़रूरत है। जब नए शब्दों को उधार लेने की ज़रूरत पड़ ही जाती है तो सब से पहले अपने इलाके के ही निकटतम अन्य जनजातीय समुदायों में प्रचलित शब्दावलियों से वांछित शब्दों का चयन करना चाहिए। इस के लिए रटांग पार कर के पंजाब के मैदानों की खाक बीनने की आवश्यकता क्यों कर पड़नी चाहिए?

लाहुल के सितारे

भारत वर्ष के उन्नति के इस युग में लाहुली भी कन्धे से कन्धा मिला कर चल रहे हैं, वहीं कुछ ऐसे भी सितारे हैं जो इस क्षेत्र में अपने तेज से लाहुल को गौरवान्वित कर रहे हैं, चाहे वह वारूणी शाशनी हो (AIEEE में जनजातीय केंडीडेट्स में भारत वर्ष में प्रथम स्थान और आईआईटी दिल्ली में पढ़ रही है या फिर विनीत बृजलाल और राम सिंह जिन्होंने भारतीय प्रशासनिक सेवा में भारत वर्ष में चौबीसवां व अठहत्तरवां स्थान प्राप्त किया या फिर राहुल नारायण जिन्होंने आईआईटी दिल्ली अंतिम वर्ष में प्रथम स्थान प्राप्त किया और आजकल मैसाचुसेट इन्स्टीच्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी, यूएसए में पीएचडी कर रहा है, या फिर लाहुली पर्वतरोही जो ऐवरेस्ट, नन्दा देवी, K2 और कंचनजंगा को बारम्बार फतह कर रहे हैं। इन पर्वतरोहियों में कर्नल प्रेम चन्द को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति प्राप्त है वहीं नई पीढ़ी में कमाण्डेंट प्रेम सिंह और श्री अमर प्रकाश भी अपना लोहा मनवां रहे हैं। इसी प्रकार डॉ. जय प्रकाश नारायण, टीम लीडर साऊथ ऐशिया ऑन एड्ज़, वर्ल्ड हेल्थ ऑर्गेनाईज़ेशन तथा श्री शाम सिंह कपूर का जम्मू कश्मीर सरकार में मुख्य सचिव बनना वह भी ऐसे कठिन समय में, हमें गौरवान्वित करता है। हमारे कितने ही युवा आज भारतीय रिज़र्व बैंक, नेशनलाईज़्ड बैंकों, एलआईसी, जीआईसी, इंज़िनियरिंग आदि में कार्यरत रहते हुए अपनी लगन व मेहनत से उच्च स्तर पर कार्य कर रहे हैं। वही आईआईएम से प्रशिक्षित युवा भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्यरत हैं। हमारे बहुत से डॉक्टर राज्य व राष्ट्रीय स्तर पर अपना लोहा मनवा रहे हैं। शिक्षा एक ऐसा क्षेत्र है जहां लाहुली समाज अपने पर गर्व कर सकता है। आज लाहौल–स्पीति एवं कुल्लू में ऐसा कोई स्कूल नहीं है जहां मुख्य अध्यापक या फिर अन्य अध्यापक लाहौल से सम्बन्ध न रखता हो। इनका अपने कार्य के प्रति आत्मनिष्ठा, लग्न, मेहनत व सच्चाई जिनका सभी मान–सम्मान करते है, फिर ऐसा क्या कि हम अभी अपने आप से सन्तुष्ट नहीं है? जैसा मैंने पहले भी लिखा था कि हमारा प्रति व्यक्ति शिक्षा पर खर्च भारत वर्ष के अनुपात में ज़्यादा है तो निश्चय ही हमें और अच्छे परिणाम चाहिए। मैं यहां पर बहुत से कार्यक्षेत्रों को कवर नहीं कर पा रहा हूं जैसे कि हमारे युवा अब कई अनछुए क्षेत्रों में भी पदार्पण कर रहे हैं जैसे कि फैशन, फिल्मी सेवा क्षेत्र, विज्ञापन सेवा क्षेत्र, कानून सेवा क्षेत्र, प्रबन्धन, उद्यमिता इत्यादि। पिछले 40–50 वर्षों के इतिहास में अनेक विसंगतियों, विस्थापन और विघटनों को झेलते हुए अपने अनथक प्रयास, लग्न, एकाग्रता और मेहनत से हमने एक मुकाम ज़रूर हासिल किया है और आज ज़रूरत है तो इसे बनाए रखने की। *घरसंगी*

आर्य असंग और विज्ञानवाद

आर्य असंग के जन्म के विषय में भगवान बुद्ध ने "मंजुश्री मूलकल्प" में सुस्पष्ट भविष्यवाणी की है। उनका नाम लोक में सूर्य और चन्द्रमा की भांति सुप्रसिद्ध हुआ। आर्य असंग ने अपने अनेक पूर्व जन्मों में बोधिचित्तोत्पाद, प्रणिधान, परिणामना आदि किया जिसके फलस्वरूप वे महायान धर्म और दर्शन का विकास व्यापक रूप से कर सके। उन्होंने पारमिता सूत्रों और शास्त्रों का गम्भीरता से अध्ययन किया, परन्तु जब सही ज्ञान नहीं हो सका, पारमिताओं के यथार्थ ज्ञान के लिए उन्होंने 12 वर्षों तक आर्य मैत्रेयनाथ की साधना की। साधना की परिणामना एवं मन में महाकरुणा उत्पन्न होने के कारण उन्हें आर्य मैत्रेयनाथ के दर्शन प्राप्त हो सके।

आर्य मैत्रेयनाथ के दर्शन के पश्चात असंग उनके साथ तुषित जाकर 50 वर्षों तक निरंतर पारमिताओं के उपदेश सुनते रहे। मैत्रेयनाथ से पांच धर्म आदि के उपदेश सुनकर वे पुनः मनुष्य लोक में वापस चले आए। अपनी माता की इच्छानुसार उन्होंने जम्बुद्वीप में बुद्ध के शासन का पुनः प्रचार कार्य आरंभ किया। उनकी कृपा से मनुष्य लोक में अमृत सदृश महायान धर्म विकसित हो सका। आर्य मैत्रयनाथ ने असंग कर महायान धर्म के सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से बताया। उन्होंने आर्य असंग को "महायान सूत्रालंकार", अभिसमयालंकार", "मध्यान्त विभंग", "धर्मता विभंग" तथा "महायान उत्तरतंत्र का उपदेश दिया। मैत्रेयनाथ के पांच धर्मों के अर्थों को भाग्यवान विनेयजनों को स्पष्ट रूप से दिखाने के लिए आर्य असंग ने "बोधिसत्व भूमि" आदि अनेक ग्रंथों की रचना की। उन्होंने महायान धर्म के अर्थों को जानकर शंकाओं के जाल का आगम और सम्यक् युक्तियों के द्वारा विनाश कर सही मार्गों की स्थापना की है।

विज्ञानवाद की दृष्टि :–

विज्ञानवाद की दष्टि क्या है यह एक गंभीर एवं कठिन प्रशन है। इसके विषय में दशभूमिसूत्र में भगवान बुद्ध की इस प्रकार देशना है। यह त्रिलोक चित्त मात्र ही है। "लंकावतार सूत्र" में भगवान बुद्ध ने कहा है कि बाह्य वस्तु नहीं है। शरीर और सम्पत्ति स्थान की तरह है। चित्त में विभिन्न आभास होने के कारण मैं उन्हें चित्तमात्र कहता हूं।

विज्ञानवाद के प्रवर्त्तक आर्य असंग हैं। उन्होंने भारतीय दर्शनों में एक नया प्राण फूंका जिसके कारण अभी तक भारतीय दर्शन विश्व में उच्चकोटि के माने जाते हैं। विशेषकर महायान दर्शन का स्थान सर्वोपरि है। अन्य भारतीय दर्शनों पर भी आर्य असंग के दर्शन का प्रभाव अधिक पड़ा है। शंकराचार्य जैसे विद्वान ने विज्ञानवाद के सिद्धान्त को स्थूल रूप में अंगीकार कर लिया था जिसके कारण आज भी उन्हें प्रच्छन्न बौद्ध के नाम से जाना जाता है। आर्य असंग ने स्वयं प्रासंगिक माध्यमिक होते हुए भी सम्पूर्ण विज्ञानवाद के सिद्धान्तों का स्पष्ट रूप से विनेयजनों के हितार्थ विवेचन किया। महायान दर्शन का प्रमुख लक्ष्य समस्त सत्वों के क्लेशों एवं आवरणों का समूल

विनाश करना तथा सर्वज्ञता जैसे सर्वोच्च पद को प्राप्त करना है। इसकी प्राप्ति के लिए महायान के मार्ग एवं भूमियों का सम्यक् अभ्यास करना पड़ता है। मार्गों के अभ्यास के बिना बुद्धत्व या सर्वज्ञता या महायान के अशैक्ष्य मार्ग को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अतः महायानी साधक को अध्ययन की अवस्था में सम्पूर्ण बौद्ध विद्याओं का अध्ययन करना अनिवार्य होता है। क्योंकि उन्हें फल की अवस्था में सर्वज्ञता को प्राप्त करना होता है। उनके कल्याण का क्षेत्र त्रिलोक के समस्त प्राणी हैं त्रिलोक के सत्वों की अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए निष्ठापूर्वक अध्ययन करना होता है। अतः वे श्रावक, प्रत्येक बुद्ध के अशैक्ष्य मार्ग प्राप्त करने के बाद भी पुनः महायान के सम्भोग मार्ग में प्रवेश करते हैं। श्रावक एवं प्रत्येक बुद्ध के अर्हत् का पद प्राप्त कर लेने पर क्लेशावरणों का समूल विनाश तो हो जाता है परन्तु यह पद बौद्ध धर्म का अन्तिम प्राप्य नहीं है क्योंकि सभी गुणों की प्राप्ति से केवल ज्ञेयावरणों का ही त्याग होता है। उन्हें क्लेशावरणों का त्याग नहीं करना पड़ता क्योंकि वे अपने मार्गो का अभ्यास करते समय क्लेशावरणों का पूर्ण रूप से परित्याग कर चुके होते हैं। अर्हत् का पद प्राप्त कर लेने पर भी इसे अन्तिम प्राप्य वस्तु नहीं माना जाता। इसे शमान्त कहते हैं। शमान्त में पतन हो जाने पर सदैव वहीं रहना पड़ता है, बुद्ध काय, वाक् तथा मन से लोक क्ल्याणार्थ कार्य करते हैं। वे पुनः महायान के विशेष धर्मों का श्रवण, चिन्तन तथा भावना करते हैं।

माध्यमिक तथा विज्ञानवाद हीनयान के चार आर्य सत्य एवं प्रतीत्यसमुत्पाद आदि को हीनयान का मार्ग क्रम मानते हैं। महायान के विशेष क्रम के आचार का आधार बोधिचित्त उत्पन्न करना है, इसमें 6 पारमिताओं को सीखना होता हैं; पांच मार्ग, दस भूमियों को क्रमशः पार करना होता है। फल की अवस्था में त्रिकाय की व्यवस्था होती है। विज्ञानवादी माध्यमिकों की तरह, है। ज्ञान–काय को नहीं मानता है। उनका कहना है कि आर्य मैत्रेयनाथ ने ''अभिसमयालंकार'' के आठवें परिच्छेद में स्वभाव काय के बाद ज्ञान– काय को न बताकर सम्भोग–काय एवं निर्माण काय का वर्णन किया है अतः विज्ञानवाद के आचार्य स्वभाव काय को स्वीकार नहीं करते हैं। विज्ञानवाद अन्तिम या सर्वोच्च पद त्रिकाय को ही मानता है। विज्ञानवाद के मार्ग के प्रमुख त्याज्य क्लेशवरण एवं ज्ञेयावरण दो तरह के आवरण हैं। इनका प्रतिपक्ष अनात्म ज्ञान की प्रज्ञा है।

बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद बौद्ध धर्म की स्थिति –

भगवान बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात भी महायान का शासन देवलोक तथा नागलोक में विस्तृत रूप से फैला। इसके अतिरिक्त अन्य द्वीपों में भी महायान के शासन का विकास हुआ। जम्बुद्वीप की भूमि पर निवास करने वाले बोधिसत्व एवं गुप्त रूप से महायान व्रत की चर्या करने वाले साधक महायान के मार्गों का अभ्यास करते थे। विनेयजनों को महायान का उपदेश देने वाले महायानी भाग्यवान साधक उन्हें महायान के मार्गों का अभ्यास कराते थे। महायान शासन को धारण करने वाले उनका प्रचार करते थे। परन्तु इस समय श्रावकयान के अनुयायियों की संख्या अधिक थी। बुद्ध के आगमों को नीतार्थ एवं नेयार्थ भेद से स्पष्ट करने वाला कोई भी विद्वान उस

समय नहीं था। अतः महायान शासन का ह्रास हो गया। आचार्य नागार्जुन ने '' अक्षयमति सूत्र'' के आधार पर तथा आर्य असंग ने ''सन्धि निर्मोचन सूत्र'' के आधार पर भगवान बुद्ध के उपदेशों में नीतार्थ का निश्चित रूप से विवेचन किया। माध्यमिक एवं विज्ञानवादी बुद्ध वचनों के विषय में नीतार्थ एवं नेयार्थ का भेद करते समय चार विधियों का प्रयोग करते हैं। ये हैं : विश्वास, मुक्ति, भाव तथा अभिसन्धि। विश्व में शान्ति एवं एकता के लिए महायान दर्शन ने महत्त्वपूर्ण कार्य किया हैं। महायान दर्शन प्राणियों के मन के प्रमुख दोष राग, द्वेष, मोह आदि भयंकर क्लेशों को सदा के लिए हटाने का मार्ग प्रदर्शित करता है। इसके अतिरिक्त सदा दुःखों से पीड़ित सत्वों के लिए सर्वज्ञता जैसा सर्वोच्च पद दिलाने का उपदेश प्रदान करता है।

हीनयान के विनेयजन धर्म नैरात्म्य के पात्र नहीं हैं। अतः हीनयान के सूत्रों में धर्म नैरात्म्य की अधिक चर्चा नहीं है। महायानी सूत्रों एवं शास्त्रों में धर्म नैरात्म्य का विस्तृत रूप में वर्णन किया गया है। विज्ञानवाद की दृष्टि में धर्म नैरात्म्य का अर्थ है रूप, शब्दादि बाह्यर्थ की असिद्धि। पृथक जनों को रूप, शब्दादि वासना के कारण वृद्धि में आभासित न होकर बाहर से आकार दिए हुए की तरह आभासित होते हैं। यह धर्मात्मग्रह सर्वज्ञता प्राप्त करने के लिए विघ्न है। ज्ञेयावरण होने के कारण महायानी गोत्र के लोग उस आवरण के प्रतिपक्ष का नाश करने के लिए विस्तृत रूप से पुण्यसम्भार का अर्जन करते हैं। इसके साथ धर्मनैरात्म्य प्रज्ञा की भावना में प्रधान माना गया है। वह भी महायान के सम्भार मार्ग से प्रारम्भ कर भावना मार्ग के अन्तिम तक पुण्य और ज्ञान सम्भार दोनों को मिश्रित रूप से अर्जित करता है। ऊपर के अकनिष्ठ क्षेत्र में दो सम्भारों को पूर्ण करते है तथा दो अवतरण त्यागकर सम्भोग काय की अभिसम्बुद्धि को प्राप्त कर लेते हैं। जैसे विनेय जनों का कल्याण हो सके वैसे नाना प्रकार के निर्माण काय निर्मित कर सत्वों के अभ्युदय और निःश्रेयस के मार्ग को प्राप्त करने की विधि की विस्तृत व्यवस्था द्वारा महायान धर्म का विकास हुआ।

चन्द्रताल की नई विज्ञापन दरें

आवरण (भीतर पृष्ठ)	
रंगीन	10,000/–
श्वेत'श्याम	7,500/–
बैक कवर (श्वेत श्याम)	10,000/–
बैक कवर (रंगीन)	15,000/–

बैक कवर (भीतर पृष्ठ)

रंगीन	10,000/–
श्वेत श्याम	7,500/–
पूर्ण पृष्ठ	5,000/–
अर्ध पृष्ठ	3,000/–
चौथाई पृष्ठ	1,000/–
शुभ कामनाएं	250/–

मिला रेपा द्वारा लोक देवताओं की स्तुति

— अजेय

इस बार मिलारेपा की जीवनी अपरिहार्य कारणों से नहीं दी जा रही है जिसके स्थान पर यह गीत प्रकाशित कर रहे हैं।

संपादक

उन दिनों साधक मिला रेपा तिब्बत के 'रत्न घाटी' नामक क्षेत्र की लाल चट्टानों वाली पहाड़ी पर एक गुफा में महामुद्रा तन्त्र की साधना कर रहे थे। एक दिन वे लकड़ियां बीनने बाहर गए हुए थे। लौटने पर क्या देखते हैं कि पांच स्थानीय देव उनकी गुफा में आराम कर रहे हैं। उन देवों की आँखें तश्तरियों जितनी बड़ी थी। उनमें से एक मिला के बिस्तर पर बैठा उपदेश दे रहा था। दो बड़ी तन्मयता पूर्वक उसे सुन रहे थे। एक भोजन परोस रहा था और पांचवां मिला की पोथियों को बड़ी उत्सुकता से उलट–पलट रहा था। कुछ पल के लिए मिला ठिठक कर उनकी गतिविधियां देखता रहा। फिर उन्हें विचार आया, "अवश्य ही ये उन स्थानीय देवों की मायावी प्रत्युत्पत्तियां होंगी, जो मुझसे रुष्ठ हैं। मैंने भी इतने लम्बे समय से यहां रहते हुए न कभी इन्हें कुछ अर्पण दिया न ही इन की स्तुति की। यह सोचकर उनके हृदय में एक सुन्दर स्तुतिगान प्रस्फुटित हुआ –

समस्त बुद्धों को प्रीतिकर
महा सिद्धों का डेरा
यह शरण स्थली एकान्त की!

लाल शिलाओं वाली रत्न उपत्यका के ऊपर
तैरता श्वेत मेघ दल
नीचे घाटी में बहती
मन्द–मन्द त्सांग नदी नीली
मंडराते विशाल गीध चक्रिल मध्य में
है गुंजार सब ओर मधु मक्षिकाओं की
मदमत्त हुए फूलों की मधुर सुरभि में
करता किल्लौल खग वन्द पेड़ों पर
और कलरव उनका
जैसे हवा में तैरता मधुर गान!
मस्त नन्हे चूज़े, पर फैलाए, प्रयाण को आतुर
मचा रहे धमा चौकड़ी बन्दर
दौड़ते, कूदते चौपाए

है कितना सुख कर
ऐसे में रहना
एकाग्रचित्त/दो बोधिचित्तों को साधना!
ओ, लोक देवताओ
प्रेतो और भूतो
तुम मिला के मित्र हो
पियो
दया और करुणा का रस
तप्त हो अपने स्थानों पर लौट जाओ!

किन्तु देवता शान्त होकर घर लौटने की बजाय मिला पर कुपित होकर उन्हें घूरते हुए बैठे रहे। उनमें से एक भयानक चेहरा बना कर निचला होंठ चबाते हुए तथा दूसरा बुरी तरह से दांत पीसते हुए आगे बढ़ने लगा, तीसरा हिंस्र अट्टहास करता हुआ उन्हें चिढ़ाते हुए ऊंची आवाज़ में चिल्लाता पीछे की ओर से झपटा। वे सब तरह तरह की भयावह मुख मुद्राओं एवं भावों से मिला को डराने की चेष्टा कर रहे थे।

उनकी नीयत को भांपते हुए मिला ने बुद्ध के उग्र रूप का ध्यान करते हुए अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा से सशक्त मन्त्रोच्चार किया। देवों पर कोई असर न पड़ता देख उन्होंने परम करुणा के भाव से सद्धर्म का उपदेश दिया। किन्तु देवता टस से मस नहीं हो रहे थे।

अन्त में मिला को सत्य का ज्ञान हुआ, परम अह्लाद में उन्होंने उद्घोष किया –

"ओ महान गुरु मरपा! जबकि तुम्हारी अनुकंपा से मैं जान चुका हूं कि यह अस्तित्व तथा इस की समस्त संवर्षत्तियां (पदार्थ और प्रकियाएं) व्यक्ति के मन के ही उत्पाद हैं और मन तो स्वयं शून्य का एक चित्राभास मात्र है; फिर कैसा मूर्ख हूं मैं, कि इन वायवी अभिव्यक्तियों को भौतिक रूप से (दैहिक स्तर पर) भगाने का प्रयास कर रहा हूं।"

इस उद्घोष के साथ उनके मन में एक सुन्दर गीत की रचना होने लगी। जो 'अनुभूति का गीत' नाम से प्रसिद्ध हुआ। कहते हैं कि गीत इतना प्रभावोत्पादक था कि देखते ही देखते उन पांच विकराल देवों का आकार छोटा होने लगा। वे आतंकित हो कर छिपने का स्थान खोजने लगे। क्षण भर में वे पांचों सिकुड़ कर एक चक्रवात में परिवर्तित हो गए और अन्ततः शून्य में विलीन हो गए।

आस्थावान बौद्धों की मान्यता है कि इस घटना के पश्चात साधक मिला रेपा को अकूत आध्यात्मिक उपलब्धियां हुई। गीतों के माध्यम से एक ही जन्म में बोधि को प्राप्त होने वाले इस कवि की कथा बौद्ध धर्म के इतिहास में अद्वितीय है।

पश्चिमोत्तर हिमालय की सांस्कृतिक समस्याएं एवं उनकी व्यापकता

–डॉ0 बनारसी लाल,

जब हम 'हिमालयी संस्कृति' शब्द का प्रयोग करते हैं तो हमारे सामने भोट–बौद्ध संस्कृति, जिसने हिमालय के पूर्वी छोर से पश्चिमी छोर तक को प्रभावित किया है, उसका प्रतिबिम्ब उभरता है। फिर भी जब हम हिमालय के धीर–गम्भीर, गहन उपत्यकाओं में झांकते हैं तो केवल बौद्ध संस्कृति ही नहीं अपितु तान्त्रिक संस्कृति का भी प्रभाव पाते हैं। इन दो विशिष्ट संस्कृतियों के प्रभाव के अतिरिक्त यहां के सामाजिक जीवन में, यहां के लोगों के व्यक्तित्व में एक और विशेषता दृष्टिगोचर होती है, वह है यहां की प्रकृति एवं भौगोलिकता का प्रभाव। यहां की प्रकृति जितनी सुरम्य एवं शान्त है, उतनी ही दुर्गम भी। वर्ष भर में लगभग आठ–नौ महीने हिमालय की ये घाटियां बर्फ से आच्छादित रहती हैं इन दिनों यहां के निवासियों का शेष विश्व के साथ सम्पर्क नहीं के बराबर होता है फिर भी हिमालय की अन्तर्धारा में करुणा, प्रेम, आनन्द और उल्लास का निस्सीम प्रवाह अविरल बहता रहता है। यहां की प्रकृति जितनी कठोर है, यहां के लोगों का स्वभाव उतना ही कोमल एवं उदार। फलतः हिमालय के निवासियों के चरित्र में स्वतः कुछ गुण प्रस्फुटित होते हैं। इन्हीं विशेषताओं से विशेषित हो कर हिमालयी संस्कृति फलित होती है।

पश्चिमोत्तर हिमालयी संस्कृति समस्याएं और संभावनाएं इस विषय पर विचार करते हुए प्रारंभ में संस्कृति क्या है तथा हिमालयी संस्कृति की क्या–क्या विशिष्टताएं हैं? इस पर विचार करना आवश्यक है। यद्यपि संस्कृति शब्द एवं इससे अभिप्रेतार्थ से हम सभी परिचित हैं फिर भी इस पर किंचित दृष्टिपात कर लेना समीचीन जान पड़ता है। आज भारतवर्ष से संस्कृति शब्द का प्रयोग प्रायः अंग्रेज़ी शब्द कल्चर के अनुवाद के रूप में प्रयोग किया जा रहा है। क्या कल्चर शब्द भारतीय परिप्रेक्ष्य में संस्कृति शब्द की अवधारणा को प्रस्तुत करने में समर्थ है, वस्तुतः भारतीय पृष्ठभूमि में संस्कृति शब्द का अर्थ एवं क्षेत्र अत्यंत व्यापक एवं गूढ़ है। इसे एक निश्चित परिभाषा में बांध कर प्रस्तुत करना भी अत्यंत कठिन है फिर भी संस्कृति शब्द की एक व्यावहारिक परिभाषा तो दी ही जा सकती है। संस्कृति शब्द की व्युत्पत्तिपरक अर्थ है–संस्कार करना। संस्कृति और संस्कार दोनों शब्द 'सम' उपसर्ग पूर्वक कृ धातु से निष्पन्न होते हैं। जिसका अर्थ है–सुधार या परिष्कार करना। यह मानव जीवन के भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों पक्षों का परिष्कार करती है। वस्तुतः संस्कृति का क्षेत्र इतना विशाल तथा व्यापक है कि उसमें मानव की समस्त भौतिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों का समावेश हो सकता हैं क्योंकि मानव की भौतिक उपलब्धियां भी हमारे आध्यात्मिक जीवन को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं। इस प्रकार सभी वैयक्तिक तथा सामाजिक क्रिया–कलाप, धार्मिक तथा दार्शनिक मान्यताएं हमारी संस्कृति को प्रभावित करती है। अतः किसी भी संस्कृति के विकास एवं परिष्कार में सैंकड़ों वर्ष लग जाते हैं यह किन्हीं क्षणिक घटनाओं का

प्रतिफलन नहीं है। इस प्रकार यह कहा जाता है कि संस्कृति वह सामूहिक चेतना है, जिससे मनुष्य का सोच–विचार, रीति–रिवाज़, त्यौहार, काम करने का ढंग, व्यवहार, खान–पान, वेश–भूषा, धर्म–दर्शन और कला आदि सभी प्रभावित होते हैं। अर्थात जो भी मनुष्य के संस्कार हैं वह सभी संस्कृति के अन्दर समाविष्ट हो जाते हैं। इन सभी घटकों से मिलकर एक सभ्य, सुसंस्कृत एवं परिपूर्ण संस्कृति एवं समाज का निर्माण होता है।

हिमालय

जब हम हिमालय शब्द का प्रयोग करते हैं तो इसका भाव मात्र हिम शिखर नहीं है। वस्तुतः हिमालय उन सभी अनाम संस्कृतियों एवं जन–जातियों का बोधक है जो सदियों से इस हिम–शिखर की गोदी में पल–बढ़ रहे हैं। हिमालय का क्षेत्र अत्यंत व्यापक एवं विस्तृत है। यह पश्चिम कराकोरम की पर्वत श्रृंखलाओं से लेकर पूर्व में आराकान पर्वत मालाओं तक लगभग ढाई–तीन हज़ार किलोमीटर की पट्टिका में फैला हुआ है। संपूर्ण हिमालय की संस्कृति का चरित्र एक समान है, उसकी समस्याओं का स्थूल विभाजन संभव नहीं। हिमालय की संस्कृति सर्वत्र एक समान समस्याओं से जूझ रही है और उसका निदान भी सर्वत्र एक समान अपेक्षित है।

क्षेत्र की व्यापकता की दृष्टि से भी देखें तो पश्चिमोत्तर हिमालय का क्षेत्र अत्यंत विशाल एवं विस्तृत है। भोट संस्कृति प्रसार की दृष्टि से देखें तो पाकिस्तान तक फैला है। वर्तमान संदर्भ में जम्मू–कश्मीर का लद्दाख एवं ज़ंस्कर, हिमाचल प्रदेश का लाहुल एवं स्पीति तथा किन्नौर और उत्तराखंड के उत्तराकाशी के क्षेत्र को सम्मिलित कर सकते हैं।

भोट शब्द को वर्तमान में तिब्बत के पर्याय के रूप में देखा एवं प्रयोग किया जाता है। परंतु ऐतिहासिक रूप से पश्चिमोत्तर हिमालय के सभी क्षेत्र भोट देश का भाग था तथा वहां जो धर्म और दर्शन सातवीं शताब्दी के बाद प्रचलित हुआ वही भोट–बौद्ध–संस्कृति है। प्राचीन समय में पश्चिमोत्तर हिमालय का क्षेत्र पश्चिमी तिब्बत का संभाग था। भोट देश में राजनैतिक घटनाओं के कारण पश्चिमी तिब्बत का राज्य क्यिद–दे–ञिमा–गोन को मिला। कालान्तर में देशज सीमाओं की प्रतिबद्धता के कारण पश्चिमी भोट प्रदेश के ये क्षेत्र भारतवर्ष के साथ जुड़ गए। राजनैतिक दृष्टि से अपने मूल भूमि से कट जाने के बाद धीरे–धीरे इन क्षेत्रों में अनेक समस्याएं आईं। अपने धर्म, दर्शन और संस्कृति से अपरिचयता का दायरा बढ़ा और आधुनिकता ने परम्परागत संस्कृति के समक्ष अनेक प्रश्नचिन्ह उपस्थित किए।

सातवीं शताब्दी में भोट–देश के नरेश स्रोड.चन–गमपो ने अपने देश के लोगों को शिक्षित करने के लिए व्याकरण सम्मत सुगठित भाषा की आवश्यकता महसूस की। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपने वरिष्ठ मंत्री थोनमी संभोट को भारतवर्ष भेजा। मंत्री थोनमी संभोट ने तत्कालीन भारतीय लिपियों के आधार पर भोट लिपि का निर्माण किया और लौट कर राजा और जनता में

प्रचारित किया। तब से तेरहवीं–चौदहवीं शताब्दी तक भारतीय और भोट विद्वानों ने मिलकर संस्कृत भाषा में निबद्ध बौद्धधर्म की विशाल ग्रंथ–राशि का भोट भाषा में अनुवाद सम्पन्न किया। उसी ज्ञान–राशि से जो विशिष्ट संस्कृति पनपी उसे ही आज हम भोट–बौद्ध संस्कृति कहते हैं। दूसरे शब्दों में अब यह हिमालयी संस्कृति भी है।

जब हम हिमालयी संस्कृति कहते हैं तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि यह भारतीय संस्कृति से भिन्न कोई अन्य संस्कृति है। भारतीय संस्कृति के दो पक्ष हैं – एक वैदिक संस्कृति और दूसरी श्रमण संस्कृति। दोनों का ही उद्‌भव, विकास, पल्लवन आर्यावर्त में हुआ। बौद्ध संस्कृति जो श्रमण संस्कृति का भाग है, वह अपनी विशेषताओं के कारण अनेक दुर्गम हिम–शिखरों, नदियों, घाटियों और रेतीले मरुस्थलों को पार कर सुदूर एशिया के अनेक देशों में फैला। साथ ही वहां पूर्व में प्रचलित धर्म और विश्वास के साथ समंजस होकर वहां अपने विशिष्ट रूपों में प्रकट हुआ। जैसे – चीन में ताओ एवं कन्फयुश्यिस के साथ, जापान में शिन्तो धर्म के साथ और तिब्बत में बोन धर्म के साथ। बौद्ध धर्म एवं संस्कृति की विशेषता है कि वह जहां भी पहुंची वहां के स्थानीय प्रचलित धर्म एवं विश्वासों के साथ घुल–मिल गई। उसी प्रकार हिमालय के दूरस्थ प्रदेशों में भी यह यहां के आदिम विश्वासों, प्रचलित मान्यताओं के साथ घुल–मिलकर रच बस गया। परिणामतः पश्चिमोत्तर हिमालयी क्षेत्रों में ऐसे अनेक रीति–रिवाज़, प्रथाएं एवं विश्वास मिल जाते हैं जिनका बौद्ध धर्म के चिंतन के साथ कोई मेल नहीं होता। जब भी हमें हिमालयी संस्कृति की चर्चा करनी होती है तब उपर्युक्त तथ्यों पर भी अवश्य ध्यान देना चाहिए।

हिमालयी संस्कृति की विशेषताएं

हिमालय की इन अन्तर्धाराओं में जिन संस्कृतियों का प्रचार हुआ उससे एवं हिमालय के प्रकृतिगत विशिष्टताओं के कारण हिमालय के समाज में विशिष्ट चरित्र एवं स्वभाव का निर्माण हुआ। यदि हम उन स्वभावगत चारित्रिक विशेषताओं पर दृष्टि डालते हैं तो यह कहा जा सकता है कि ऐसे चरित्र के निर्माण में उदार समतावादी बौद्ध संस्कृति के साथ–साथ यहां के कठोर प्रकाशित का भी हाथ है। हिमालयवासी स्वभावतः धैर्यवान एवं परिश्रमी होते हैं चाहे वह स्त्री हो या पुरुष। यहां के लोगों का स्वभाव वर्जनाओं से मुक्त अत्यंत सरल होता है। यहां के लोग कर्त्तव्यनिष्ठ और व्यवहार कुशल तो होते ही हैं साथ ही दूसरों की सहायता करने की भावना भी अधिक होती है। करुणा एवं मैत्री आदि विचारों के प्रभाव से यहां के लोग अत्यंत संवेदनशील होते हैं और उनमें दूसरों पर प्रभुत्व जमाने की भावना कम रहती है। इनके अतिरिक्त यहां के लोगों के स्वभाव में सद्‌भाव, सहयोग, सहनशीलता, समता की भावना, सामंजस्य, सज्जनता और सौहार्द आदि गुणों की अधिकता होती है। इन्हीं विशिष्ट गुणों के कारण हिमालयवासी और यहां की संस्कृति विशिष्ट हो जाती है। परन्तु आज बाहरी दुनियां से अधिक सम्पर्क होने एवं आधुनिकता के प्रभाव के कारण इन विशिष्ट गुणों में भी क्षरण देखा जा रहा है।

पश्चिमोत्तर हिमालय की सांस्कृतिक समस्याएं

सम्प्रति यदि हम हिमालयी संस्कृति विशेषकर पश्चिमोत्तर हिमालयी संस्कृति की दृष्टि से विचार करें तो संस्कृति के इन घटकों में अनेकविध परिवर्तन एवं विकृतियां आ चुकी हैं और निरन्तर क्षरण की ओर हैं। इन में से कुछ विषयों को यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

भाषा एवं बोली

पश्चिमोत्तर हिमालय की अनेकानेक समस्याओं के साथ भाषा का प्रश्न अत्यधिक महत्वपूर्ण है। किसी भी संस्कृति की सुरक्षा एवं विकास का प्रभावशाली माध्यम भाषा होती हैं। सम्पूर्ण हिमालयी क्षेत्रों में भाषा के रूप में भोटी भाषा प्रतिष्ठित है। इस भाषा में यहां का समस्त धर्म–दर्शन, चिन्तन, साहित्य, ज्ञान–विज्ञान और दैनन्दिन पूजा पाठ के ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इसलिए भोट भाषा हिमालय वासियों की मातृभाषा ही नहीं अपितु पवित्र धर्म की भाषा भी है। इसमें यहां के पूर्वजों ने जिस ज्ञान–राशि को संचित किया है, उसका कोश भी है। इसमें शताब्दियों की साधना से विकसित दर्शन, साहित्य, कला, काव्य, ज्योतिष, आयुर्वेद, शिल्पशास्त्र , मूर्ति–कला, चित्रकला आदि हैं। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि इतनी समृद्व परम्परा को वहन करने वाली भाषा को यहां की शिक्षा प्रणाली में कोई स्थान नहीं दिया गया है। यहां के छात्र इन विषयों एवं भाषा के अध्ययन के अभाव में और नवीन ज्ञान–विज्ञान तथा हिन्दी और अग्रेज़ी के चकाचौंध के सामने इन्हें भूलते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में भोट भाषा में निबद्ध श्रेष्ठ विद्या परम्पराओं ने जिस श्रेष्ठ संस्कृति का सृजन किया, उसका संवर्धन एवं अध्ययन अत्यन्त आवश्यक जान पड़ता है।

भोट भाषा से परिचय नहीं रहने से उसमें संचित विशाल ज्ञान–राशि यहां के निवासियों के लिए व्यर्थ हो चुकी है। यहां के मठ–मन्दिर एवं गोम्पाएं दुर्लभ प्राचीन ग्रन्थों से भरी पड़ी हैं, किन्तु भाषा की अज्ञानता के कारण वे केवल पूजा की वस्तु मात्र रह गए हैं। अतः भोटी भाषा का सम्बन्धित राज्यों की शिक्षा व्यवस्था में स्थान होना अत्यन्त आवश्यक है। इससे एक तो संविधान में प्रदत्त मातृभाषा में शिक्षण के प्रावधान का अनुपालन होगा, वहीं दूसरी ओर भारतीय संस्कृति का भी पोषण होगा।

यद्यपि भोटी भाषा सम्पूर्ण हिमालय को धार्मिक रूप से एक दूसरे को एक सूत्र में जोड़े रखती है, तथापि इस भाषा से अनेक क्षेत्रीय बोलियां निःसष्त हुई हैं। इन सभी का नामकरण क्षेत्रगत है। इसमें किंचित उच्चारणगत भेद अवश्य है जो कि स्वाभाविक है। जैसे – लद्दाख में लद्दाखी, लाहुल में लाहुली बोलियां, किन्नौर में किन्नौरी बोलियां एवं अरुणाचल प्रदेश में मोन आदि। मूल भाषा से परिचय नहीं रह जाने से आज इन क्षेत्रों में मिश्रित बोलियों एवं भाषाओं का प्रचलन होने लगा है। यहां के लोग अपने दैनिक प्रयोग में हिन्दी, उर्दू एवं अंग्रेज़ी भाषाओं के शब्दों

का धड़ल्ले से प्रयोग कर रहे हैं। प्रचलन में नहीं आने से अपनी भाषा के मूल प्राचीन शब्द धीरे–धीरे लुप्त होते जा रहे हैं। वैसे भी आजकल इन क्षेत्रों में बचपन से बच्चों को अंग्रेज़ी माध्यम के विद्यालयों में शिक्षा दी जा रही है। जहां स्व–संस्कृति का कोई पुट नहीं होता। इसके स्थान पर छोटे बच्चों को पर–संस्कृति में जीने का अभ्यासी बनाया जाता है और बच्चा धीरे–धीरे अपनी संस्कृति और भाषा को हेय दृष्टि से देखता है। इस प्रकार एक नयी पीढ़ी धीरे–धीरे उभर रही है, ऐसा प्रतीत होता है कि समय आएगा जब अपनी बोली एवं भाषा का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। विश्व में ऐसी अनेक घटनाएं हैं जहां बड़ी भाषाओं ने छोटी एवं अल्पसंख्यक भाषाओं को समाप्त कर दिया। यहां की भाषा एवं बोली भी इसी समस्या से संकटापन्न है।

भोटी भाषा उस महान संस्कृति का वाहक है जिसने शताब्दियों से आज तक मानव समाज को समता, सहयोग और सद्भाव का पाठ पढ़ाया। भोटी भाषा एवं इसमें निहित विद्या से ही हिमालयी संस्कृति निःसष्त है। यदि इसका दैनन्दिन व्यवहार एवं लेखन में प्रचलन बंद हो जाए तो हमारी सदियों पुरानी संस्कृति अपने पुराने मानवीय मूल्यों से उखड़ जाएगी और आधुनिकता की भंवर में फंसकर हमारा समाज अनेक प्रकार की समस्याओं के मकड़ जाल में फंस जाएगा। अतः इसे बचाए रखना और प्रचलन में लाना कितना महत्वपूर्ण है, स्पष्ट ही है।

शिक्षा

भाषा से जुड़ी समस्या शिक्षा की भी है। प्राचीन समय में हिमालयी प्रदेशों के विद्यार्थी उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए तिब्बत के विशाल महाविहारों सेरा, ड्रेपुङ गदेन एवं टशी ल्हुनपो में जाया करते थे। जहां इन सीमान्त क्षेत्रों के विद्यार्थियों के लिए पृथक छात्रावासों की व्यवस्था थी। स्वतंत्रता के पश्चात इन सीमान्त क्षेत्रों के भारतीय गणराज्य में शामिल होने तथा चीन द्वारा तिब्बत पर आक्रमण के फलस्वरूप शिक्षा की इस व्यवस्था में भी व्यवधान पड़ा और विद्यार्जन का यह क्रम भंग हो गया। फलतः हिमालयी क्षेत्रों के विद्यार्थियों को भी भारतवर्ष की शिक्षा व्यवस्था के अंतर्गत सम्बन्धित राज्यों की शिक्षा व्यवस्था अपनानी पड़ी। परन्तु खेद के साथ कहना पड़ता है कि संस्कृति के तत्वों का बिलकुल सन्निवेश नहीं किया। परिणामतः इस शिक्षा व्यवस्था से यहां के विद्यार्थियों को सरकारी नौकरी और अन्य रोज़गार तो मिलता गया, परंतु अपने धर्म, संस्कृति, भाषा और शास्त्रों में निबद्ध शास्त्रीय विद्याओं से पराङमुख होते गए। इस कारण अनजाने में ही यहां के लोग इन शास्त्रों को मैदानी लोगों की तरह यह मानने लगे कि ये मात्र धर्म, कर्मकाण्ड एवं पूजा–पाठ से सम्बन्धित पोथियां हैं। इन शास्त्रों में विद्या की ऐसी कौन सी विधा समाविष्ट नहीं है जो आज की लौकिक एवं आध्यात्मिक विद्याओं से श्रेष्ठ न हो। इनमें सर्वश्रेष्ठ धर्मदर्शन और चिन्तन के अतिरिक्त साहित्य, व्याकरण, इतिहास, ज्योतिष, आयुर्वेद, पशुचिकित्सा, शिल्पशास्त्र, वास्तुशास्त्र, मूर्तिकला, चित्रकला, भूगोल आदि अनेक विषय समाविष्ट हैं। इन सब के ऊपर है एक मानवीय समतावादी उदार विचार जो आज के युग की आवश्यकता है। भाषा की अनभिज्ञता एवं शिक्षा व्यवस्था में भाषा एवं विषय सम्मिलित नहीं होने से यहां के लोग इन विषयों को भूलते जा रहे हैं।

इसके लिए आवश्यक है कि यथासम्भव शीघ्र इन राज्यों के विद्यालयीय शिक्षा व्यवस्था में भोटी भाषा एवं इसमें निबद्ध विषयों को सम्मलित किया जाए। इन विषयों की शिक्षा की व्यवस्था नहीं होने से इस श्रेष्ठ विद्या–परम्परा से यहां के लोग विमुख होते जा रहे हैं जबकि आज विश्व भर के विद्वानों में भोटी भाषा में निबद्ध कग्युर एवं तंग्युर में उपलब्ध विद्याओं अर्थात बौद्ध विद्याओं के प्रति अत्यधिक रुचि बढ़ रही है। ऐसे में हिमालयी क्षेत्रों में इन परम्परागत विद्याओं के अध्ययन के लिए व्यवस्था होना नितांत आवश्यक है ताकि यहां की युवापीढ़ी को अपनी विरासत को जानने का अवसर मिले और उनकी रुचि बढ़े। अन्यथा ये शास्त्र मात्र गोम्पाओं एवं पूजा–ग्रहों में शोभा की वस्तु बनकर रह जाएंगी।

धर्म

इन हिमालयी क्षेत्रों में यह देखने में आ रहा है कि हिमालयवासी अपने युगों पुराने बौद्ध धर्म को छोड़कर दूसरे धर्म एवं मतों के प्रति आकर्षित होकर उन्हें अपना रहे हैं। बौद्ध धर्म संगठित धर्म होने के बावजूद कभी भी दूसरों पर बलात् थोपा नहीं गया। इसकी यह विशेषता है कि यह समाज के सामान्य जन तक पहुंचा। तिब्बत से संपर्क टूट जाने के बाद इन क्षेत्रों के लोग सही दिशा–निर्देश के अभाव में दिग्भ्रमित होते रहे। इसका लाभ अन्य मतावलम्बियों ने उठाया और अवसर देखकर इन क्षेत्रों में प्रवेश कर गए। यद्यपि भारतीय संविधान के अनुसार व्यक्ति को किसी भी धर्म एवं मत को अपनाने की स्वतंत्रता है परंतु प्रश्न है कि क्या यह परिवर्तन विवेक सम्मत है? बुद्ध ने कहा है कि जो भी मैं कहता हूं भिक्षुओ! पहले उसका परीक्षण करो, जिस प्रकार सुनार स्वर्ण की शुद्धता की परीक्षा के लिए उसे आग में जलाता है, तपाता है, कूटता है, कसौटी पर कसता है तभी उसे शुद्ध सोना मानता है। उसी प्रकार मेरे वचनों की भी परीक्षा करो। तब यदि ठीक लगे तो अपनाओ अन्यथा नहीं। इतना विचार स्वातन्त्र्य अन्य किसी भी धर्म या संप्रदाय में नहीं है। प्रश्न वही है, क्या हिमालयवासी आज अपने श्रेष्ठ सद्धर्म को छोड़कर जो दूसरे मतों एवं धर्मों को अपना रहे हैं, उस धर्म परिवर्तन का आधार क्या दूसरे धर्म का मात्र अन्धानुकरण तो नहीं? हिमालयवासियों को इस पर गम्भीरता से सोचना होगा। अन्यथा हिमालयी शांत वातावरण भी धार्मिक वैमनस्य, धार्मिक द्वन्द्व एवं साम्प्रदायिक झगड़ों से ग्रस्त हो जाएगा। ऐसे में जो श्रेष्ठ सांस्कृतिक एवं सामाजिक मानवीय मूल्य हैं, उनका अवमूल्यन होगा और हिमालयी संस्कृति अपनी विशिष्टताओं से च्युत हो जाएगी।

रीति–रिवाज़ एवं सामाजिक व्यवस्थाएं

हिमालयी प्रदेशों के कुछ रीति–रिवाज़ तो यहां की विशिष्ट आदिम संस्कृतियों से सम्बद्ध और कुछ बौद्ध संस्कृति से। ये रीति–रिवाज़ एवं प्रथाएं परम्परागत रूप से सदियों से चली आ रही हैं। इन्हीं परम्पराओं के कारण यहां के समाज एवं संस्कृति की पहचान तथा अस्तित्व बना हुआ है। ये रीति–रिवाज़ एवं प्रथाएं मात्र परंपरा के वाहक ही नहीं हैं अपितु इनके द्वारा हमें अपने पूर्वजों की जनजाति, परंपरा, संस्कृति, व्यवसाय, धर्म, इतिहास, सामाजिक व्यवस्था इत्यादि अनेक विषयों का

भी ज्ञान होता है। यद्यपि बहुत सी परंपराएं हैं जो आज के युगानुरूप नहीं हैं और धन एवं समय की दृष्टि से भी हानिकारक प्रतीत होती हैं। उन्हें त्यागना या उनका परिमार्जन भी होना चाहिए लेकिन अपने मौलिक स्वरूप को बनाए रखते हुए जबकि हिमालयी समाज में प्रायः यह देखने में आ रहा है कि युगों पुरानी अपनी परंपरागत व्यवस्थाओं, रीति–रिवाज़ों एवं प्रथाओं को सम्पन्न कराने के लिए धन एवं समय की बर्बादी जानकार और आधुनिकता के समक्ष रूढ़िवादी एवं अतार्किक व्यवस्था करार देकर उन्हें बंद किया जा रहा है। वहीं येन केन प्रकारेण अपनी परंपरागत व्यवस्थाओं को बंद कर दूसरों (मैदानी क्षेत्रों) की संस्कृति या चलचित्रों आदि में देखकर उनके रंग ढंग एवं प्रथाओं को अपना रहे हैं। इन नई उधार ली गई परंपराओं में निजता या स्वत्व की भावना बिल्कुल नहीं होती और न ही अपने समाज के चिंतन से कोई मेल होता है। इस प्रकार अपनाए जा रहे परसंस्कृति के तत्वों के पीछे भी बोध या विवेक का कोई स्थान नहीं है धन का अपव्यय तो इस नई उधारी संस्कृति में भी कम नहीं बल्कि अधिक ही है। इसमें बाह्य आडम्बर का नया रूप झलकता है। इस प्रकार अपनी अज्ञानता एवं अंधानुकरण की प्रवृत्ति के कारण ही हिमालयवासी अपनी श्रेष्ठ सांस्कृतिक एवं सामाजिक व्यवस्थाओं का हनन कर रहे हैं।

इतना ही नहीं, अपने पारंपरिक तीज–त्यौहार एवं उत्सवों को छोड़कर मैदानी क्षेत्रों की देखा–देखी में वहां के तीज–त्यौहारों एवं उत्सवों को मनाते हुए अक्सर इन सीमान्त के समाज को देखा जा सकता है जिन उत्सवों का आज से करीब 50–60 वर्षों पूर्व हिमालयी समाज में कोई स्थान नहीं था, वे आज अनुकरण की प्रवृत्ति के कारण पश्चिमोत्तर हिमालय के जन–जीवन में पैठ बनाने में समर्थ हो गए हैं।

कला, व्यवसाय एवं स्थापत्य

परिवर्तन के इस बहाव में यहां की कलाएं व्यवसाय एवं स्थापत्य शैली आदि सभी संकटापन्न हैं। जिन हस्त कलाओं में यहां के लोगों ने दक्षता प्राप्त की और जिन कलाओं के कारण यहां की संस्कृति की पहचान बनी वे कलाएं अब विलुप्ति के कगार पर हैं। इन हस्त कलाओं में सोने, चांदी एवं धातुओं से बने पूजोपकरण, वाद्ययंत्र, पारंपरिक आभूषण एवं लोहे से बने कृषि उपकरण, ऊन–पशम से बने चादर, दौड़ू, मौजे, मनदे एवं टोपियों पर की गई महीन कलाकारी, लकड़ी के उपकरण एवं अन्य साज़ो–सामान, में उकेरी गई काष्ठ कलाएं, चित्रकला जिसमें विशिष्ट है। बौद्ध थंका चित्रकला एवं मंदिरों एवं गोम्पाओं में की गई भित्तिचित्र, मूर्ति–कला जिसमें शामिल हैं – धातु एवं मिट्टी की शांत एवं रौद्र मूर्तियां जो यहां के गोम्पाओं में सज्जित हैं। आज पश्चिमोत्तर हिमालय के इन कलाओं के कलाकार भीषण आर्थिक संकट से गुज़र रहे हैं। ये कलाकार अपने पैतृक व्यवसायों को छोड़कर जीविका के लिए सरकारी नौकरी एवं अन्य व्यवसायों को अपना रहे हैं। ऐसी स्थिति में ये कलाएं विलुप्त होती जा रही हैं अतः यह आवश्यक है कि इन्हें सही प्रोत्साहन एवं संरक्षण मिले ताकि यहां की संस्कृति जीवन्त बनी रहे। हिमालयी संस्कृति एवं समाज में उपजे इस

प्रकार के अनेक दूसरे व्यवसाय हैं जैसे भेड़पालन, खेती–बाड़ी, सीमान्त व्यापार आदि। यद्यपि आधुनिक परिवेश में इन्हें परम्परागत रूप से अपनाने की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती, फिर भी इनके अभाव में संस्कृति के अनेक जीवन्त तत्व टूटने लगते हैं। एक उदाहरण लें – भेड़–पालन व्यवसाय का इससे अन्य लाभ के अतिरिक्त जो ऊन प्राप्त होती है उससे हिमालय जैसे शीत प्रान्त के लोग अपने लिए गर्म कपड़े तो बनवाते ही हैं जो यहां के ऋतु के अनुकूल होते हैं, साथ ही ऊन से बने कपड़े जैसे चादर, दौड़ू, मोजे, नमदे आदि में जो कलाकारी की जाती है उस कला का संरक्षण भी होता है। भेड़–पालन व्यवसाय या ऊन के अभाव में इन कलाओं का जीवन्त रह पाना कठिन हो जाएगा। जब लोग अपने पैतृक व्यवसाय या पारंपरिक व्यवसाय छोड़ने लगते हैं तो उसके साथ जीवन्त संस्कृति का एक तत्व टूट जाता है।

इस शृंखला में यहां की प्राचीन स्थापत्य शैली एवं गृह निर्माण की विधियों की भी चर्चा आपेक्षित है। सदियों पुरानी गृह–निर्माण सामग्री एवं विधियां अब बीते काल की वस्तु बनने जा रही हैं। स्वाभाविक है कि जब बाज़ार में गृह निर्माण की आधुनिक सामग्री उपलब्ध हो तो हिमालयवासी भी उन्हें अपनाने से स्वयं को अलग नहीं रख सकते। वस्तुतः प्राचीन गृह निर्माण की सामग्रियां प्रकृति–प्रदत्त होती थी। स्थानीय सामग्रियां यहां की प्रकृति के अनुकूल होती हैं और लोग शीत–ताप आदि प्रतिकूल मौसम में भी स्वयं को संरक्षित रख सकते हैं। इसका ज्वलंत उदाहरण है स्पीति का ताबो महाविहार जो एक हज़ार साल बीत जाने के बाद भी आज तक जस का तस है। परंतु आज सीमेंट एवं लोहे की उपलब्धता के कारण हिमालयी क्षेत्र के लोग भी मैदानी लोगों का अनुकरण करते हुए इन शीत प्रदेशों में कंकरीट के घर बनाने लगे हैं। इन नई सामग्रियों के प्रयोग से प्राचीन स्थापत्य शैली को भी बरकरार रखना कठिन हो रहा है और वह शैली भी संकटापन्न है। शीत प्रदेशों में लोहे एवं सीमेंट से बने भवनों से सद्यः दुष्परिणाम तो यह सामने आ रहा है कि शीताधिक्य के कारण यहां के लोगों का स्वास्थ्य प्रभावित हो रहा है और अनेकविध बीमारियों से जकड़े जा रहे हैं। यह सत्य है कि बदलाव एवं विकास का विरोध नहीं किया जा रहा है। वस्तुतः विकास या परिवर्तन का स्वरूप ऐसा होना चाहिए कि जो सामग्री यहां की प्रकृति प्रदत्त है उसे ही वैज्ञानिक ढंग से परिमार्जित कर, विकसित कर युगानुरूप प्रयोग करना चाहिए, जो यहां की पारंपरिक स्थापत्य शैली के संरक्षण के लिए भी अनूकूल होगा।

खान–पान एवं वेश–भूषा

आधुनिकता एवं परिवर्तन का बहाव इतना तीव्र है कि इससे हिमालयी दुर्गम क्षेत्र भी अछूते नहीं रहे। वर्तमान समय में हिमालयी क्षेत्रों के खान–पान एवं वेश–भूषा में जिस तीव्र गति से बदलाव हो रहे हैं इससे ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ दशकों बाद हिमालयी क्षेत्र किसी आधुनिक विकसित शहर से कम नहीं होगा। इस परिवर्तन का मुख्य घटक संचार माध्यम है। दूरदर्शन

एवं अन्य व्यावसायिक चैनलों ने यहां के घर–घर में पैठ बना ली है। अत्यधिक व्यावसायिकता, नकदी फसलों का उत्पादन एवं बागवानी के कारण हिमालयवासियों ने अपनी पारंपरिक फसलों को उगाना लगभग बंद कर दिया है। अपने पौष्टिक अनाजों के स्थान पर रासायनिक एवं जैविक खादों एवं अनेक प्रकार के कीटनाशक दवाओं के प्रयोग से संरक्षित खाद्यान्नों को बाज़ार से खरीद कर उपभोग कर रहे हैं। जिससे प्रत्यक्षतः स्वास्थ्य संबंधी अनेक जटिलताओं का सामना करना पड़ रहा है। इसके अतिरिक्त विभिन्न आयोजनों, उत्सवों एवं धार्मिक अनुष्ठानों के अवसर पर जिन स्थानीय खाद्य सामग्री एवं उससे निर्मित प्रतीकों का प्रयोग होता था, अब उनके स्थान पर बाज़ार से खरीदे अन्न के प्रयोग होने से भावात्मक एवं सांस्कृतिक रूप से जुड़ाव का बोध नहीं होता। मात्र औपचारिकता भर निभाया जाता है। इससे सांस्कृतिक क्षरण भी हो रहा है।

सदियों पुराने पहनावे जिसके कारण यहां की जनजातियों की विशिष्टता पहचानी जाती है, को आज यहां के लोगों ने लगभग छोड़ दिया है। उसके स्थान पर टेरीकाट, टेरीलीन एवं जीन्स आदि से बने पैंट, कोट एवं कमीज़ पहनने लगे हैं। पुराने पहनावे मात्र बुजुर्गों का पहनावा बनकर रह गए हैं या किसी सांस्कृतिक कार्यक्रम के नत्य दलों का। आधुनिक वस्त्रों से भी पारस्परिक पोशाक बनाए जा सकते हैं और अपने सांस्कृतिक मूल्यों को बनाए रख सकते हैं परंतु यह प्रवृत्ति बहुत कम देखने में आ रही है। पारंपरिक पोशाक एवं खान–पान भी किसी भी संस्कृति की पहचान हैं। अब ये तत्व हिमालयी समाज से धीरे– धीरे विलुप्त हो रहे हैं।

गीत–संगीत एवं नृत्य

गीत–संगीत एवं नत्य भी संस्कृति का एक प्रमुख घटक है। हिमालयी क्षेत्र जो वर्ष भर में आठ–नौ महीने हिमाच्छादित रहता है, इन कठिन दिनों में यहां के लोग राग–रंग में डूबे रहते थे। वैसे भी मान्यता है कि हिमालय में ही देव, गन्धर्व एवं किन्नरों का वास था। फलतः इन क्षेत्रों में उच्च कोटि की गीत–संगीत एवं नत्य विधाओं का उद्‌भव हुआ है। परंतु समय के परिवर्तन के साथ अन्य सांस्कृतिक तत्वों की भांति परम्परागत गीत–संगीत एवं नत्य की विधाएं भी संकटापन्न हैं। इनकी मौलिकता को बचाए रखना कठिन हो रही है। आज हिमालयवासी इन परंपराओं गीत–संगीत एवं नत्यों को भूलते जा रहे हैं। जैसे–जैसे पुरानी पीढ़ी समाप्त हो रही है। उनके साथ ही ये विधाएं भी समाप्त होती जा रही हैं। आज हिमालयी समाज में पारंपरिक गीत–संगीत एवं नत्य के स्थान पर आधुनिकता एवं हिन्दी सिनेमा के प्रभाव से हिन्दी सिनेमा के गीतों का प्रचलन देखा जा रहा है। इसी प्रकार पारंपरिक नृत्य एवं वाद्ययंत्र भी विलुप्त होते जा रहे हैं। इधर कुछ नए गीतों की रचनाएं भी हुई हैं परंतु वह अपनी भाषा के स्थान पर हिन्दी एवं पहाड़ी भाषा में रचे गए हैं और इन गीतों पर स्पष्ट प्रभाव हिन्दी सिनेमा के गीतों का झलकता है। ऐसी स्थिति में पारंपरिक गीत–संगीत एवं नत्य विधाओं का संरक्षण आवश्यक हो रहा है। क्योंकि इनमें हिमालयी संस्कृति की विशिष्टता एवं अस्तित्व छिपी हुई है। इतना ही नहीं इन पारंपरिक गीतों से हमें अपने इतिहास

की अनेक घटनाओं का भी परिचय मिलता है।

प्रकृति एवं पर्यावरण

यहां की संस्कृति के संरक्षण एवं समस्याओं पर विचार करते समय यहां की प्रकशित एवं पर्यावरण पर भी ध्यान देना होगा। प्रकृति एवं पर्यावरण को भी बचाए रखना अत्यंत आवश्यक है। यद्यपि आज के इस संचार क्रांति एवं विकसित वैज्ञानिक उपलब्धियों का लाभ समयानुसार यहां के लोगों को भी मिलना चाहिए परंतु क्षेत्रीय प्राचीन विरासत एवं श्रेष्ठ सांस्कृतिक परंपराओं के मूल्य पर नहीं। विकास के नाम पर इन शीत प्रदेशों में आज कंकरीट के भवन बनाए जा रहे हैं। छोटी–बड़ी विद्युत परियोजनाओं के लिए पहाड़ों को डायनामाइट एवं बारूद से तोड़ा जा रहा है। नदियों को बांधा जा रहा है, वृक्षों को अन्धाधुंध काटा जा रहा है, घर–घर, गांव–गांव तक सड़कें पहुंचाने के लिए पहाड़ी ढलानों, चट्टानों एवं खेतों को काटा जा रहा है जिससे व्यापक भू–क्षरण के साथ–साथ अनेक प्राकृतिक आपदाओं को झेलना भी पड़ रहा है। मोटर एवं गाड़ियों के धुएं से हिमालय का पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है। यद्यपि विकास के लिए ये सभी ज़रूरी हैं फिर भी यहां की प्रकृति एवं पर्यावरण का जो क्षरण हो रहा है, उसके दूरगामी प्रभाव की अनदेखी नहीं करनी चाहिए। विकास का मॉडल यहां की प्रकृति को ध्यान में रखकर तैयार करना चाहिए जिससे यहां की संस्कृति भी संरक्षित रहे। सरकार विकास के नाम पर अनेकानेक परियोजनाएं चलाती है, जैसे इन शीत मरुस्थलों में वृक्षारोपण की। यद्यपि अनेक दृष्टियों से वृक्षारोपण उचित है, परंतु हिमालय के अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जो इसके लिए उपयुक्त नहीं हैं जैसे लद्दाख एवं स्पीति के रेतीले क्षेत्र। यदि इन क्षेत्रों में वृक्षारोपण किया जाता है तो निश्चित ही मेघों का आकर्षण होगा और बारिश होगी। ऐसी स्थिति में जहां वर्ष भर बारिश नहीं होती हो वहां बारिश से तबाही का अंदाज़ा लगाना कठिन होगा। जन धन के नाश के अतिरिक्त शताब्दियों से इन शीत प्रदेशों में जो मिट्टी की ईंटों से निर्मित हमारे प्राचीन सांस्कृतिक विरासत के बौद्ध मठ–मंदिर एवं गोम्पाएं हैं उनकी सुरक्षा भी कठिन होगी।

सामाजिक कुरीतियां

अंत में संक्षेप में हिमालयी समाज में व्याप्त कुछ सामाजिक कुरीतियों एवं प्रथाओं की ओर भी ध्यान दिलाना आवश्यक समझता हूं। अच्छाइयां और बुराइयां किसी भी समाज का चरित्र होता है। परंतु अच्छाइयों एवं श्रेष्ठ परंपराओं के कारण उस समाज की पहचान बनती है। ऐसे में जो भी बुराइयां या कुरीतियां हमारे समाज में व्याप्त हैं, उन्हें हिमालय के जागरूक नागरिकों को दूर करने का यथासम्भव प्रयास करना चाहिए। हिमालय की इन धीर–गम्भीर–गहन उपत्यकाओं में बौद्ध–धर्मानुयायी रहते हैं। इन क्षेत्रों में ऐसे अनेक रीति–रिवाज़ एवं कुप्रथाएं हैं जो बौद्ध धर्मानुकूल नहीं हैं। ये उन आदिम एवं स्थानीय विश्वासों के अवशेष है जो हमारा समाज परंपरा से ढो रहा है। आज के किसी भी सभ्य समाज के लिए इन कुरीतियों का व्यवहार ग्राह्य नहीं है। उनमें से कुछ

कुरीतियों का यहां संक्षेप में निर्देश किया जा रहा है, सम्प्रति विस्तार में जाने का अवसर नहीं है ये हैं :–

1 मद्य का अव्याहत प्रयोग, 2 पशु बलि, 3 जाति–प्रथा, 4 बहुपति प्रथा, 5 बाल विवाह की परंपराएं।

उपसंहार

स्वतंत्रता के पश्चात हमारे देश में विकास के लिए अनेक योजनाएं एवं नीतियां बनाई गईं, परंतु समग्र सांस्कृतिक शिक्षा नीति का सर्वथा अभाव रहा। उसमें भी हिमालयी संस्कृति की तो घोर उपेक्षा की गई। इसके फलस्वरूप हिमालयी प्रदेशों में आज अपनी विरासत एवं संस्कृति के प्रति नई युवा पीढ़ी में किसी प्रकार की जिज्ञासा या रुचि नहीं है। अपनी सांस्कृतिक विरासत के प्रति युवा पीढ़ी में जागृति कैसे पैदा की जाए, यह एक समस्या है। इसके लिए सरकार के साथ–साथ हिमालयवासियों को भी जागरूक हो जाना चाहिए।

प्राचीन काल में जिन धार्मिक एवं सांस्कृतिक तत्वों ने यहां के लोगों की मनोसंरचना को ढालने में बड़ी भूमिका अदा की थी, उसमें परिवर्तन आने के कारण लोगों की पुरानी मनोसंरचना भी धीरे–धीरे बदल रही है। हमें परिवर्तन के स्वरूप को समझना होगा। तभी हम जान पाएंगे कि इन परिवर्तनों का कौन सा पक्ष अनुकूल है और कौन सा प्रतिकूल, कौन सा पक्ष ग्राह्य और कौन सा अग्राह्य, कौन सा शुभ और कौन सा अशुभ। तब यह स्पष्ट होगा कि प्रतिकूल, अशुभ और अग्राह्य के परिहार के लिए हमें अपने धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिवेश के अनुकूल मूल्यवान तत्वों की रक्षा करनी है और परिवर्तन की आंधी में पूरी तरह बह जाना और अपनी सांस्कृतिक विरासत को उस आंधी की मर्ज़ी पर छोड़ देना उचित नहीं। परंपरा के नाम पर सभी का पोषण भी आवश्यक नहीं परंतु हमें उन सांस्कृतिक विरासत के तत्वों की रक्षा तो करनी ही होगी, जिन्होंने हमारे पुरानी पीढ़ी के लोगों में अनेक उदात्त मानवीय एवं सामाजिक गुण उत्पन्न किए थे और श्रेष्ठ मनुष्य बनने की प्रेरणा दी थी।

सहायक संपादक
केन्द्रीय उच्च तिब्बती मध्ययम संस्थान
सारनाथ

कुल्लू जनपद में नागों अप्सराओं का वर्चस्व

गतांक **छटी कड़ी–** में आपने पढ़ा– –तेज राम नेगी

भिक्षुक को 'राय–अखाड़ा के ठाकुरों एवं अन्य धनिक–परिवारों से भोजन प्राप्त न होना। वहां से निराश होकर एक निर्धन–परिवार की वृद्धा के घर के भोजन प्राप्ति से सम्पूर्ण तृप्ति एवं सन्तुष्टि, तत्पश्चात उस वृद्धा को आने वाले सात दिनों के भीतर जलप्लावन की सम्भावना से सचेत रहने की चेतावनी देना और वृद्धा के भोजन की व्यवस्था के लिए एक अक्षयपात्र एवं अमरता का वरदान देना। तत्पश्चात वहां से व्यासर गांव की ओर प्रस्थान करना। व्यासर के ठाकुरों से भोजन की प्राप्ति हेतु याचना तथा ठाकुरों से वादविवाद करना। ठाकुर द्वारा भिक्षुक को गुप्त–भेदिया समझ कर कारागार में डालने का आदेश देना।

सातवीं कड़ी –

ठाकुर का आदेश पाकर दो सैनिक आगे बढ़े और उस भिक्षुक को पकड़ लिया और उसे बलपूर्वक कारागार की ओर ले जाने लगे। परन्तु भिक्षुक ने उन दोनों सैनिकों को धक्का देकर अपने को मुक्त कर लिया और ठाकुर की ओर मुंह कर आक्रोश भरी चेतावनी देते हुए कहा–"ऐ ठाकुर! मुझे लगता है कि धनबल और शारीरिक बल के अभिमान ने तुम्हारी बौद्धिक क्षमता को अत्यन्त क्षीण कर दिया है और एक धन लोलुप, स्वार्थी, निर्दयी और मानवताविहीन निष्ठुर प्रशासक का रूप धारण किया है। तुझे अपनी उस प्रजा की बिल्कुल चिन्ता नहीं है जो भूख और प्यास से तड़प–तड़प कर मर रही है, यदि प्रजा की यही दशा बनी रही तो मुझे ऐसा आभास हो रहा है कि प्रजा में तुम्हारा नाम लेने वाला और भूमिकर देनेवाला एक भी मानव शेष नहीं बचेगा। किसानों और निर्धनों के धन से गुलछर्रे उड़ाने वाले ऐ निष्ठुर ठाकुर, निरपराध भूखे अतिथियों, साधु–सन्तों, निर्धनों को सताने के कारण तुम्हारा यह दुर्गनुमा परिसर सात दिनों के भीतर जलप्लावन से नष्ट–भ्रष्ट हो जाएगा।

"पूजा करो, पाठ करो, तीर्थ करो हज़ार,
निरीह–निर्धन को कष्ट देवे, सब कुछ बेकार।"

ठाकुर को श्राप देकर जब वह अपने लौटने वाले मार्ग की ओर अग्रसर होने लगा तो वे दोनों सैनिक उसके पीछे दौड़कर पकड़ने की चेष्टा करने लगे परन्तु भिक्षुक तेज़ी से दौड़कर मार्ग के एक मोड़ पर घनी झाड़ियों में अचानक लोप हो गया और उनकी आंखों से ओझल हो गया। बहुत देर तक उन दोनों सैनिकों और भिक्षुक को लौटते न देखकर ठाकुर ने कुछ और सैनिक उसे ढूंढने के लिए उस स्थान के चारों ओर दौड़ाए परन्तु भिक्षुक का कहीं अता पता न था। कुछ क्षणोपरान्त एक सैनिक ने एक भारी भरकम अजगर को ठाकुरगढ़ी के पीछे ऊँचे टीले पर बने एक सरोवर के किनारे कुण्डली मारकर अपना फन फैलाए फुंफकारते हुए देखा। उसने अपने अन्य साथियों को शीघ्रता से

अपने पास बुलाकर सरोवर के किनारे कुण्डली मारकर बैठे हुए अजगर को दिखाया। अतः इस दृश्य को दिखाने तथा ठाकुर को बुलाने के लिए एक सैनिक को शीघ्रता से ठाकुर के सम्मुख भेजा। उसने वहां पहुच कर ठाकुर को सारा वृत्तान्त सुनाया। भिक्षुक का रहस्यपूर्ण ढंग से अदृश्य होने तथा ठाकुरगढ़ी के ऊपर भारी भरकम नाग के कुण्डली मार कर बैठने का समाचार सुन कर ठाकुर मन ही मन में सोचने लगी कि भिक्षुक के अचानक अदृश्य हो जाने तथा नाग के रूप में प्रकट होकर फिर सरोवर के किनारे बैठने के पीछे न जाने क्या रहस्य छिपा हुआ है तथा फिर भिक्षुक के श्राप को स्मरण कर मन ही मन में कुछ चिंता और घबराहट अनुभव करने लगा। अपनी घबराहट को छिपाने के लिए ठाकुर ने अपना धनुष और बाण–तरकश उठाया और उस सैनिक को साथ लेकर कथित स्थल पर पहुंच कर अपनी आंखों से सारा दृश्य देखा।

अजगर ठाकुर को अपने शस्त्र धनुष–बाण के साथ आते देखकर और अधिक आवेश में आकर अपनी बड़ी–बड़ी भयंकर जीह्वाएं और दाढ़ें निकाल कर अधिक ऊँचे स्वर से फुंफकार मारने लगा। सांप का ऐसा भयानक रूप देखकर एक बार तो भय से ठाकुर के शरीर में कंपकंपी सी होने लगी थी परन्तु शीघ्र ही अपने आपको सम्भाल कर क्रोध के आवेश में उसका शरीर और अधिक कांपने लगा था। नाग का ऐसा भयानक रूप देखकर सैनिक भी अपने–अपने शस्त्र उठाकर उस नाग को मार गिराने के लिए तत्पर और ठाकुर को भी प्रोत्साहित करने लगे। ज्यों ही ठाकुर ने अपने तरकश से तीर निकालकर अपने धनुष पर चढ़ाया और उस अजगर पर निशाना साधने लगा तो ठाकुर को अपनी भयभीत आंखों से अपने ही हाथ के धनुष और तीर, दो भयंकर नागों के रूप में दिखाई देने लगे। ठाकुर भयभीत होकर अपने हाथ के धनुष–बाण को शीघ्रता से अपने से दूर फैंक कर मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ा। ठाकुर के बेहोश होते ही सरोवर के किनारे बैठा हुआ नाग भी अपने स्थान से लोप हो चुका था। अपने ठाकुर को मूर्छित होकर धरती पर पड़ा देखकर सब सैनिक ठाकुर के चारों ओर खड़े होकर देखने लगे। उनमें से एक सैनिक ने ठाकुर का हाथ अपने हाथ में लेकर नब्ज़ टटोली और उत्साहित एवं प्रसन्न होकर कहने लगा – "हमारे ठाकुर केवल अल्प मूर्छित होकर गिर पड़े हैं। कृपा करके शीघ्र ही निकट की बावड़ी से पानी का एक पात्र भर कर लाओ, शायद पानी के कुछ छींटे देने से अपनी पूर्वावस्था को प्राप्त हो जाएं। ठण्डे पानी के सात बार मुंह पर छींटे मारने से ठाकुर हड़बड़ाकर खड़े हो गए और भयभीत नज़रों से सरोवर की ओर देखने लगे तथा भयंकर नाग को अपने स्थान पर न पाकर कुछ राहत की सांस ली और घर की ओर चल दिए।

कालीनाग ने भी अदृश्य रहकर व्यास–सरोवर को चारों ओर से झाड़–झंखाड़ और पहाड़ से मिट्टी–पत्थर तोड़कर भोजपत्रों के साथ बहुत ऊँचा घेरा बान्ध दिया तथा पर्वतीय झरनों के पानी के रुख को इस संरोवर की ओर मोड़ दिया। परिणाम स्वरूप इस सरोवर के जल स्तर का घेरा पहले से कई गुणा बड़ा हो गया। इस सरोवर के बहुत नीचे तथा ठाकुर–निवास के घरों के समानान्तर दक्षिण की ओर ठाकुरों के ही साठ बीघा धान के रोपे (खेत) थे। इन धान के खेतों में सरोवर की ओर से एक झरना बहता हुआ आता था और इसी झरने के पानी से धान की रोपाई की

जाती थी।

ज्येष्ठ–आषाढ़ के महीनें में शेष स्थानों में पानी का अभाव भले ही खटकता रहता था, पर इस क्षेत्र के पर्वत–शिखर पर एक विशाल सरोवर सदैव पानी से भरपूर रहने के कारण इससे निस्सृत होने वाले झरने का स्त्रोत कभी भी सूखता नहीं था। इस झरने के पानी से इस क्षेत्र के सारे खेत पानी से लबालब भरे रहते थे। क्योंकि धान रोपाई के लिए खेत की मिट्टी नर्म और समतल बनाए रखने के लिए पानी का होना अनिवार्य है।

इस प्रकार इन दिनों ठाकुर के मार्ग दर्शन में खेतों को समतल तथा धान की पनीरी रोपने के लिए 'साठ हाली' (बैलों को हांकने और संचालन में सहायक), साठ जोड़ी बैल, साठ 'कुदाली' (कुदाल को हाथ में लेकर काम करने वाले आदमी) तथा साठ 'रुहाड़ी' (धान रोपने वाली महिलाएं) काम पर लगाए जाते थे। धान के रोपों के एक ओर ऊँचे टीले पर बाजा–बजन्तरी एवं शहनाई वादक कलाकार अपनी कला के प्रदर्शन से इन खेतों में काम कर रहे खेतीहरों का उत्साह बढ़ाया करते थे। धान रोपाई का यह उत्सव परम्परा से ही चला आ रहा था।

इन दिनों भी ठाकुरों के ये कारकून खेतों में धान–रोपाई के काम में लगे हुए थे। ग्रामीण महिलाएं लोक–गीतों की अपनी मधुर और चित्ताकर्षक स्वर लहरियों से इस 'रुहणी–पर्व को चित्ताकर्षक एवं कामुक वातावरण बनाने में योगदान दे रही थीं। गायन विद्या में दक्ष पुरुष कलाकार भी महिलाओं तथा शहनाई वादक के गीतों का उसी कामुक अन्दाज़ में उत्तर देने में सहयोग दे रहे थे। आकर्षक लोक–नृत्य की धुनों पर पुरुष एवं महिलाएं पानी भरे खेतों में ही सामूहिक रूप से घेरा बान्ध कर एक दूसरे का हाथ पकड़ कर नृत्योन्माद में थिरकने में मस्त थे। पुरुष एवं महिलाएं अलग–अलग टोली में बन्धकर 'लाल्हड़ी नृत्य' का रंगारंग कार्यक्रम भी प्रस्तुत करते जा रहे थे। इन खेतों के एक ओर ऊँचे मंच पर ठाकुर एवं उनके परिवार के सदस्य उस 'रुहणी–उत्सव' का भरपूर आनन्द लेने के लिए विराजमान थे। कभी–कभी जल किलोल का आनन्द लेने के लिए पुरुष एवं महिलाएं खेतों के पानी और मिट्टी से बने कीचड़ को एक दूसरे पर उछालते थे। जिससे उनका सारा शरीर कीचड़ के पानी से लथपथ होकर मनोरंजक सा बन जाता था। इस प्रकार ठाकुर का यह सारा परिवार तथा खेतों के काम में लगे हुए सारे कारकून (कामगार) अपने इस मनोरंजक कार्य में इतने व्यस्त थे कि उन्हें समय व्यतीत होने का तनिक भी आभास नहीं हुआ।

लगभग तीसरे पहर का समय रहा होगा जब 'व्यासर' गांव के पीछे 'जिल्हणी–धारा' नामक स्थान पर स्थित सरोवर की पश्चिम दिशा में एक काले बादल का टुकड़ा पर्वत की पीठ से ऊपर उभरता हुआ आसमान की ओर भयंकर काले–नाग की भान्ति सरकने लगा और कुछ ही देर के पश्चात उस काले नाग ने तूफान का रूप धारण किया जिससे ऐसा आभास होने लगा कि पर्वतीय क्षेत्रों के छोटे–छोटे झरनों ने सैकड़ों नागों की भान्ति बल खाते हुए तथा उग्र रूप धारण करते हुए सरोवर के जलस्तर को बड़ी शीघ्रता से भरने में सहयोग देने लगे हों। लगभग ढाई–घड़ी की इस भीषण वर्षा ने इस विशाल सरोवर को लबालब भर दिया। परिणामस्वरूप कालीनाग द्वारा नवनिर्मित

सरोवर के तट भारी जलस्तर का ताव न सह सकने के कारण टूटकर चारों ओर बिखरने लगे जिससे व्यासर–गांव के एक ओर बने ठाकुरों की ऊँची–ऊँची राजगढ़ियां एवं किलेनुमा परकोटे इस बाढ़ की चपेट में आ गए। इसके अतिरिक्त उनके धान के रोपे जिसमें वे रूहणी–पर्व का आनन्द लेने में तल्लीन थे, चारों ओर बाढ़, भयंकर तूफान के साथ–साथ रोपे और खेतों के बीचोंबीच में पर्याप्त लम्बा–चौड़ा एक 'खोह' (गड्ढा) बन गया। चारों ओर भारी चीख–पुकार मच गई और अपनी जान बचाने के लिए अपने–अपने इष्ट देवी–देवताओं का नाम ले लेकर पुकारने लगे। परन्तु उनका यह रोना–चिल्लाना व्यर्थ सिद्ध हुआ। होनी ओर अनहोनी को कोई नहीं टाल सकता। वे सारे के सारे साठ बैलों की जोड़ी समेत साठ हाली, साठ रुहाड़ी, साठ ही कुदाली इस भयंकर खोह में डूबते चले गए और अभिमानी ठाकुरों का सारे का सारा कुनबा भी इस अन्तहीन–गर्त में समाता चला गया और इन सब के पीछे कोई भी व्यक्ति इनके लिए रोने–धोने वाला शेष नहीं रहा।

जिस स्थान पर 'रुहणी' का कार्यक्रम चल रहा था, उस क्षेत्र का आकार–प्रकार कुछ–कुछ 'ओखलीनुमा' था। उस क्षेत्र के चारों ओर लघु आकार की पहाड़ियां थीं। मध्य क्षेत्र कुछ गहरा और कुछ समतल था। इसलिए उस क्षेत्र में वर्षा के दिनों में हर समय पानी खड़ा रहता था। अधिक पानी के निकास के लिए कोई भी सुगम मार्ग बना हुआ नहीं था। जोहड़ों और वर्षा आदि का अधिक पानी एकत्र होने से इस धरती की नरम मिट्टी के नीचे अनोखी 'गुड़–गुड़' और झरर.....झरर.....सी ध्वनि सुनाई देने लगती थी। ऐसा आभास होता था कि इस धरती की गहराई में कुछ खोखले आकार के प्राकृतिक रूप से गड्ढे (खोह) बने हुए हैं। इन गड्ढों में कुछ ऊँचाई से पानी गिरने की ध्वनि का आभास होता था। ऐसा लगता था कि इस क्षेत्र के भीतर बड़ी–बड़ी चट्टानों के मध्य की सारी धरती खोखली हैं।

कालीनाग के प्रकोप के कारण तूफानी वर्षा से 'जिल्हणी–धार' के विशाल सरोवर के बान्ध टूट जाने से उसका सारा पानी बड़ी तीव्र गति से इस क्षेत्र की ओर बहने लगा जिससे यहां की नरम मिट्टी की धरती फटने लगी और शीघ्र ही वहां एक बहुत बड़ा 'खोल्ह' (गड्ढा) बन गया। इसके साथ ही इस क्षेत्र में पहले से एकत्र हुआ पानी भी बड़ी शीघ्रता के साथ इस खोह में गिरने लगा। इस स्थान पर 'साठ जोड़ी बैल' के साथ काम कर रहे हाली, साठ–रुहाड़ी, 'साठ–कुदाली' तथा ठाकुरों का सारा खानदान अपने महलनुमा गढ़ियों के साथ इस तेज़ धार के पानी के बहाव के साथ बड़ी ही शीघ्रता के साथ इस मौत के कुएं में गिरने लगे। पलक झपकने की देरी में ही उन सब का नामो निशान मिट गया। इस प्रकार भीतर ही भीतर चट्टानों भरे खोह में एक दूसरा ही सरोवर तैयार होने लगा जिसने कुछ ही क्षणों में इन खेतों और चारों ओर की दिशाओं में खड़ी पहाड़ियों को अपने उदर में समेट लिया। तदोपरान्त शीघ्र ही एक भारी धमाके की आवाज़ के साथ इस भीतरी सरोवर का विस्फोट हुआ जिससे 'जिल्हणी–धार' के विशाल सरोवर से लेकर 'राय आखाड़ा' तक के लगभग 5–6 मील के क्षेत्र ने एक समुद्र की भान्ति भारी जलप्लावन का रूप धारण कर लिया। 'राय आखाड़ा' के लगभग सौ दो सौ घरों को जो नदी व्यास तक के विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए थे, पलक झपकने से भी कम समय में अपने में ले लिया।

पटनी मुहावरे

1. शेइ कुर्छः जेह्पि – (लाल मेमना जन्मना) – किस्मत खुलना।
2. ट्रिके शिल्ज़ि – (काट कर ले जाना) – जल्दी जल्दी सब खरीद ले जाना।
3. च्वाह पक्चि – (बालिश्त से नापना) – बड़ी बड़ी बातें करना।
4. पोम्बोरोग शुबि – (घमासान होना) – आपस में लड़ाई झगड़ा करना।
5. आह् कार्पि – (मुंह सूखना) – किसी का सामना करने से घबराना।
6. थ्वक्चि अपि – (तोड़ने आना) – एकदम उत्तेजित होकर वाक्युद्ध करना।
7. टीरङ छ्मिग् केटि – (आंख में नमक –मिर्च डालना)– धोखा देना।
8. चीरह् लङजि – (खुमानी बेचना) –अत्यधिक ठंड के कारण सो नहीं पाना।
9. टटुङ् अपि – (गले तक आना) – मुशिकल में पड़ना।
10. चङ्सि अपि/माबि – (निगला जा सकना/न सकना) – विश्वसनीय लगना/न लगना।
11. फबलह् ल्हज़ि – (गोलाकार मशरूम बना देना) – बुरी तरह से पीटना।
12. तब ल्हज़ि – (राख कर देना) – नाश करना।

संकलन–विकास ओथङ्बा

पर्वतारोहण अभियान

–प्रेम सिंह

अपनी असीम ऊंचाई 8850 मीटर (29035') के लिए दुनियां भर में अपनी चमक बिखेर रहा माउण्ट ऐवरेस्ट तिब्बत में कोमोलुनग्मा तथा नेपाल में सागर माता के नाम से जाना जाता है, परंतु बहुत कम लोग यह जानते हैं कि विश्व को उच्चतम तथा अत्यंत भयंकर पर्वत का नाम कैसे पड़ा। यह 1849 से 1855 के दौरान की बात है, जब नेपाल में स्थित हिमालय की चोटियों को सर्वे ऑफ इंडिया ने पहली बार नापा था, उस समय किसी ने भी यह कल्पना तक नहीं की थी कि संसार की सबसे ऊंची चोटी अपने सामने पड़ी छोटी चोटी द्वारा छुपी हुई थी। उस समय क्योंकि अधिकतर चोटियों का कोई नाम नहीं था इसलिए इस चोटी का नाम अस्थाई रूप से चोटी XV (पंद्रह) रखा गया था। संसार की उच्चतम चोटी को खोजने के बाद इस शक्तिशाली चोटी के लिए उसके अनुरूप नाम की खोज आरम्भ हुई। इस मुद्दे पर 10 साल तक वाद–विवाद व विचार–विमर्श चलता रहा तथा बहुत से नाम सुझाए गए। कर्लन एंड्रू वाघ जो कि उस समय भारत के सर्वेयर जनरल थे ने अपने उप पदाधिकारियों, कर्नल हेनरी थुलियार और मुख्य गणक राधानाथ सिकधर से परामर्श करके यह निर्णय लिया कि संसार की उस उच्चतम चोटी को खोजने वाले तथा अपने पूर्वाधिकारी सर जॉर्ज ऐवरेस्ट जो पहले भारत के सर्वेयर जनरल थे, के नाम पर उस चोटी का नामकरण किया जाए। माउण्ट नाम (पदवी) कर्नल वाघ द्वारा एक निश्चित चोटी के लिए रखा गया। एक साल बाद ऐवरेस्ट का नाम बदलकर माउण्ट ऐवरेस्ट रखा गया।

कैप्टन एस.एस. कोहली उस समय जल सेना से प्रतिनियुक्ति पर भा.ति.सी. पुलिस में थे, ने सन 1964 से आरंभ हुई आई.टी.बी.पी. में पर्वतारोहण, तैनाती परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए पहली साहसिक यात्रा पूर्वी नन्दा देवी तथा त्रिसूली तक संपन्न की। इन चोटियों पर सफलतापूर्वक आरोहण के बाद उन्हें तीसरी बार भारतीय पर्वतारोहण का नेतृत्व करने का गौरव प्रदान किया गया। इन्हीं के नेतृत्व में भारतीय नौ सदस्यों द्वारा माउंट ऐवरेस्ट पहुंचने का इतिहास रचा गया था। उसके बाद बहुत से पर्वतारोहण अभियान भा.ति.सी. पुलिस अधिकारियों के नेतृत्व में किए गए और बहुत सी मुख्य चोटियों पर आई.टी.बी.पी. के कर्मियों ने सफलतापूर्वक आरोहण किया।

अब बल का मनोयोग धरती की उच्चतम अटारी के लिए प्रयास करने का था। इसलिए माउंट ऐवरेस्ट के लिए पर्वतारोहण की योजना बनाई गई। श्री हुकुम सिंह, अपर उप महानिरीक्षक के नेतृत्व में सन 1992 में इसे कार्यान्वित किया गया। इस पर्वतारोहण के दौरान आई.टी.बी.पी. पर्वतारोहियों ने उस शक्तिशाली चोटी को 10 तथा 12 मई 1992 को फतह किया, जिसमें दूसरी भारतीय महिला संतोष यादव भी शामिल थी। चीनी ही पहले लोग थे जिन्होंने 25 मई, 1960 को उत्तर दिशा से शिखर पर चढ़ने में सफलता हासिल की थी। तिब्बती महिला धतोंग ने 27 मई, 1975 को शिखर पर चढ़ने में सफलता हासिल की थी। सन् 1992, 1993 तथा 1995 में भी भारतीय पर्वतारोहियों द्वारा चीन की तरफ से इन विशालकाय पर्वत पर चढ़ने का प्रयास किया गया। जिसका

पश्चिमी बंगाल सरकार द्वारा प्रतिभूति किया गया है जो कि कोलकाता पर्वतारोहण संघ द्वारा चलाया जा रहा है। दुर्भाग्य से ये पर्वतारोही शिखर तक नहीं पहुंच सके। आई.टी.बी.पी. जो कि पर्वतारोहण के क्षेत्र में हमेशा आगे रहा है, ने इस चुनौती को स्वीकार किया तथा माउंट ऐवरेस्ट के लिए पर्वतारोहण की योजना बनाई, जो कि 1996 में ऐवरेस्ट शिखर तक जाने वाले सबसे कठिन उत्तर के रास्ते से कार्यान्वित की गई थी। 25 सदस्यीय दल का नेतृत्व श्री महेन्द्र सिंह, सेनानी सेवानिवृत्त द्वारा सन 1996 में मानसून से पहले के दौरान किया गया था। यह दल आठ सदस्यों को ऐवरेस्ट के शिखर तक पहुंचने में सफल हुआ। इस तरह से इस रास्ते को नापने वाले पहले भारतीय बने। इसके बाद बहुत से पर्वतारोही इस रास्ते से ऐवरेस्ट तक कार्यान्वित किए जा रहे हैं। सन 2003 में श्री हरभजन सिंह, अपर उप महानिरीक्षक ने एक और पर्वतरोहण का विचार किया जिसका उद्देश्य सन 2005 में मानसून के बाद उत्तर के रास्ते ऐवरेस्ट पर चढ़ने का था परंतु चीनियों द्वारा तकनीकी स्तर पर उठाई गई चंद आपत्तियों के कारण पर्वतारोहण को टाल दिया गया। इसलिए सन 2006 में मानसून से पहले के दौरान चलाई गई 28 सदस्यीय दल जिसमें एक–एक सदस्य आई.बी. तथा सी.आर.पी.एफ. से थे, का नेतृत्व श्री हरभजन सिंह, अपर उप महानिरीक्षक ने किया, जिन्हें इस क्षेत्र में व्यापक अनुभव प्राप्त था। इस दल को एक साल के लिए कठिनतम प्रशिक्षण, औली तथा लेह लद्दाख के क्षेत्र में दिया गया था। इस अवधि के दौरान दल के सदस्यों ने पंचाचूली प्रथम सर्दियों की अत्यंत ठंडे वातावरण वाली परिस्थितियों में लेह में स्थित स्टॉक कांगड़ी पर चढ़ाई की।

मुख्य सदस्यों के अलावा पर्वतारोहण में 10 HAPs (HIGH ALTITUDE PORTER) को भी साथ लिया गया। जिसमें 6 HAPs दार्जिलिंग से बाकी के चार शेरपा नेपाल के थे। इस पर्वतारोहण को श्री शिवराज पाटिल केन्द्रीय गृह मंत्री ने 25 मार्च, 2006 को अपने निवास से फलेग ऑफ किया तथा दल नेता को राष्ट्रीय, तथा आई.टी.बी.पी. के झंडे सौंपे।

श्री प्रेम सिंह, उप सेनानी के नेतृत्व में पर्वतारोहण के अग्रिम दल को जिसमें दस सदस्य तथा 6 शेरपा थे। तीन भारी वाहनों के साथ 26 मार्च, 2006 को काठमांडू के लिए रवाना किया गया। इसके अलावा मुख्य दल ने अपने नेता के नेतृत्व में नई दिल्ली से काठमांडू के लिए 30 मार्च को उड़ान भरी तथा काठमांडू में अग्रिम दल में शामिल हो गए। काठमाडू में सभी ज़रूरी औपचारिकताओं को पूरा करने के बाद अग्रिम दल 10 शेरपाओं के साथ जिनमें 4 नेपाली शेरपा शामिल थे, ने 31 मार्च को 17,200 फीट की ऊंचाई पर स्थित बेस कैंप के लिए प्रस्थान किया और चार दिन तक चलने के बाद दल चार अप्रैल को बेस कैंप में पहुंचा। मुख्य दल एक बार फिर काठमांडू से ल्हासा (तिब्बत की राजधानी) के लिए उड़ा तथा ल्हासा के बेस कैंप तक सड़क के रास्ते गया तथा 5 अप्रैल को बेस कैंप में अग्रिम दल के साथ शामिल हो गए। वहां पहुंच कर सामानों को सोर्ट आउट किया व परिस्थितियों के अनुरूप होने में चार पांच दिन लगे। इस रास्ते से एक फायदा यह है कि व्याक्ति बेस कैंप तक तो ड्राईव कर सकता है तथा उससे आगे 21,400 फीट की ऊंचाई पर स्थित एडवांस बेस कैंप तक के लिए चीनी पर्वतारोही संघ द्वारा याक उपलब्ध कराए जाते हैं। खराब मौसमी परिस्थितियों के कारण 6–7 दिन तक हम योजना के अनुरूप एडवांस बेस कैंप तक मार्च नहीं कर

सके। बेस कैंप तथा एडवांस बेस कैंप के मध्य एक अंतरिम कैंप लगाने के बाद अंत में 20 अप्रैल को ईस्ट रोमवक ग्लेशियर पर एडवांस बेस कैंप को लगा सके। एडवांस बेस कैंप तक का रास्ता आम था। केवल कुछ जगहों को छोड़कर खुले पत्थरों से ढ़की ढ़लान से मोरेन, स्क्री व सिरके बीच से होकर जाना पड़ता है। मुख्य रूप से प्रत्येक को एक ऐसी घाटी से होकर गुज़रना था जिसके रास्ते में हिमनदियों द्वारा एकत्रित किया गया कूड़ा कर्कट Seraces तथा Scree था। दोनों कैंपों के बीच की दूरी 19 किलोमीटर है तथा इसमें 4000 फुट की चढ़ाई शामिल है जिसे कोई भी एक साथ में पार नहीं कर सकता है। इसलिए इस परेशानी पर विजय प्राप्त करने के लिए हमने 18,200 फीट की ऊंचाई पर अंतरिम कैंप लगाया। यहां पर पर्वतारोहियों को ज़िम्मेदारी दी गई कि वे अपना व्यक्तिगत सामान स्वयं उठाएं तथा उपकरणों, राशन, टेन्ट, बर्तन तथा अन्य सामग्री की ढुलाई के लिए याक किराए पर लिए गए।

एडवांस बेस कैंप 21,400 फीट की ऊंचाई पर स्थित पूर्वी रोम्बक ग्लेशियर पर लगाया गया। यह पर्वतारोहण संबंधी क्रिया क्लापों का केन्द्र बिंदु था तथा उच्चतर कैंपों तक चढ़ने की योजनाएं यहीं पर बनाई गईं थीं। मुख्य सदस्यों के अलावा अन्य सभी सदस्यों को उच्चतर कैंपों पर होने वाली क्रिया क्लापों को सहारा देने के लिए यहीं पर रखने हेतु प्राथमिकता दी गई। इस कैंप से आगे सभी भारी सामग्री को ढ़ोने की ज़िम्मेदारी मुख्य सदस्यों एवं HAPs की थी। केवल उच्च तकनीकी दक्षता वाले सदस्य इस केन्द्र से आगे बढ़ सके। ABC (C-III) से C-VI (North Col) के बीच का रास्ता ग्लेशियर पर से था, जहां पर प्रत्येक को बर्फ की दीवारों Bergchsund, Crevasses तथा Ice ARETE से जूझना था। यद्यपि दोनों कैंपों की दूरी ज़्यादा नहीं थी, परंतु नार्थ काल पर पहुंचने के लिए जिन दिक्कतों का सामना करना पड़ता था, उनसे जूझने के लिए मानसिक और शारीरिक शक्ति की आवश्यकता थी। कैंप IV योजना के अनुरूप लगाया गया तथा अब हमको भारी चीज़ों को ढोने तथा C-IV से आगे का रास्ता खोलने की चिंता थी। कैंप V के रास्ते को पार करने के लिए अधिक शक्ति तथा समय की ज़रूरत थी क्योंकि इस रास्ते में पर्वतारोहण के लिए अधिक ऊंचाई शामिल थी तथा हवा की गति 100 किलोमीटर प्रति घंटे से ज़्यादा होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति को अत्यंत मश्किल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता था। जहां पर फिसलने तथा हिमनदियों में गिरने का खतरा अधिक था। परंतु हिमवीर 25750 फीट की ऊंचाई पर स्थित उत्तरी पर्वत श्रृंखला पर C-V को लगाने के लिए दृढ़निश्चियी थे। कैंप 5 से आगे का रास्ता बर्फीली चट्टानों तथा बर्फबारी के कारण अधिक कठिन था। ज़्यादा ऊंचाई शामिल होने के कारण चढ़ाई और चुनौतीपूर्ण बन गई थी। यह कैंप 27300 फीट ऊंचाई पर स्थित ढ़लान पर लगाया जाना था जिसका उतार चढ़ाव 80 डिग्री से कम नहीं था। जिन कठिनाइयों का सामना टैंटों को गाढ़ने में होता है, उसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। इस ऊंचाई पर जीवित रहना आपके पास उपलब्ध ऑक्सीजन की बोतलों पर निर्भर करता है। हम सभी बिना ऑक्सीजन प्रयोग किए कैंप तक पहुंच तो सके परंतु बिना ऑक्सीजन के कार्य करने के लिए प्रत्येक को बहुत अधिक शारीरिक तथा मानसिक शक्ति की आवश्यकता थी। शिखर पर चढ़ने वाले नौ सदस्यों तथा चार HAPs के रहने के लिए जगह बनाने तथा तीन टैंटों को गाढ़ने में चार घंटे लगे। हम भाग्यशाली थे कि टैंटों को गाढ़ते वक्त तेज़ हवा तथा आंखें चुंधियाने वाली बर्फीली आंधियों का सामना नहीं

करना पड़ा, नहीं तो यह घातक साबित हो सकता था। क्योंकि इतनी ऊंचाई पर ऐसी तेज़ हवाओं के बीच टैंटों का गाढ़ना लगभग असंभव है। इस प्रकार 9 मई तक सभी कैंप स्थापित किए जा चुके थे तथा कैंप 6 जो कि चढ़ाई के लिए अंतिम कैंप था वहां पर ऑक्सीजन, भोजन सामग्री तथा चढ़ाई में प्रयोग होने वाले उपकरण पहुंचा दिए गए थे। यद्यपि सभी कैंप हमारी योजना के अनुरूप लगाए गए परंतु अचानक दस मई के बाद मौसम खराब होना शुरू हो गया। इसलिए सभी सदस्य एडवांस बेस कैंप में वापिस बुला लिए जो कि हमें बराबर अंतराल पर मौसम की जानकारी दे रहे थे, ने हमें सूचित किया कि 13 मई के बाद 5–6 दिन के लिए मौसम अनुकूल रह सकता है। इसलिए शिखर पर जाने वाला पहला दल जिसका नेतृत्व श्री प्रेम सिंह, द्वितीय कमान उप नेता कर रहे थे को 6 अन्य सदस्यों के साथ जिनमें निरीक्षक वांगचुक शेरपा, उप निरी. जोत सिंह, सिपाही पसांग शेरपा, नवांग, विशालमणी एवं सी.आर.पी.एफ. के सि. किशन के साथ 4 HAPs शामिल थे आगे जाने का कार्य सौंपा गया। इस दल ने 12 मई को नॉर्थ कॉल (C-4) के लिए प्रस्थान किया तथा C-4 पर रात भर रहने के बाद दल ने 13 मई को कैंप 6 के लिए प्रस्थान किया।दल ने C-5 पर तथा उससे आगे कम से कम समय रुकने के लिए प्राथमिकता दी। इसलिए उन्होंने कैंप –5 पर रुकने के बजाए सीधे कैंप –6 के लिए प्रस्थान किया। दल ने C-5 पर रुकने के बजाए सीधे कैंप–6 तक जाने का निर्णय लिया। यद्यपि दल के सदस्यों को कैंप 5 को बाईपास करते हुए कैंप 6 तक सीधे पहुंचने में काफी मुश्किल का सामना करना पड़ा, परंतु आप यदि दृढ़ निश्चयी हों तो कुछ भी असंभव नहीं है। जो कि इस दल के साथ हुआ और 9 घंटे लगातार प्रयास करने के बाद हम दोपहर के तीन बजे कैंप–6 पहुंचे। हमारे पास चार घंटे थे जिसमें हमें जगह को तैयार करके टैंटों को गाढ़ना था। शाम के सात बजे तक यह तैयार था तथा मेरे द्वारा शिखर दल के प्रत्येक सदस्य जिनमें HAPs भी शामिल थे, को टैंट आबंटित किया गया। 11 बजे तक अंतिम चढ़ाई के लिए बढ़ने का निर्णय किया गया तथा इसी बीच हम में से प्रत्येक व्यक्ति दिए गए समय में अपने आप को तैयार करने के लिए समर्पित था। इसी बीच मौसम लगातार खराब चल रहा था परंतु हमें विश्वास था कि यह हमारे शिखर पर पहुंचने से पहले साफ हो जाएगा। रात को साढ़े दस बजे हम में से प्रत्येक व्यक्ति तैयार था तथा एक के बाद एक हमने टैंटों से बाहर आना शुरू कर दिया। शायद बांगचुक तैयार होकर टैंट से बाहर आने वाला अंतिम व्यक्ति थे। उस समय रात के 1.:40 बजे थे जब हमने निर्णायक अभियान शुरू किया। बंधी रस्सियों पर चलने के लिए सख्त अनुशासन का पालन करना ज़रूरी है तथा कोई भी गलती एक घातक दुर्घटना तक ले जा सकती है। इसलिए प्रत्येक को दूसरे की चढ़ाई में दखल दिए बिना इस का सख्ती से अनुसरण करना पड़ता है। हम सभी अत्यन्त हर्ष और उत्साह के साथ ऊपर चढ़ रहे थे तथा सभी किसी भी ऐसी संभावित घटना के प्रति स्त्रोत थे जो रास्ते में कहीं पर भी किसी भी समय घट सकती थी। उसी दौरान वहां पर दो अन्य पर्वतारोहण दल भी थे जो हमारा अनुसरण कर रहे थे। उनमें से एक वह था जो हमारे आगे चल रहा था। लगातार हो रही बर्फबारी के अलावा स्टेप 2 तक हमें कोई कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा। सुबह के 6 बजे तक हम सभी स्टेप –2 (28000 फीट) के ऊपर तक पहुंचे तथा उसी समय मौसम भी साफ होना शुरू हुआ। मुझे स्वयं ज्ञात था कि शिखर तक पहुंचने में अभी 2 या अढ़ाई घंटे लगेंगे। इसके अलावा अब प्रत्येक सदस्य अपने सामने बर्फ की सफेद चादर से लिपटे हुए

शक्तिशाली ऐवरेस्ट को देख सकता था। स्टेप 2 तक पहुंचने के बाद कोई वापिस जाने की सोच भी नहीं सकता और हमें शिखर तक पहुंचने का पूर्ण विश्वास भी था। नवांग एक नौजवान और ऊर्जावान क्लाईम्बर, जो कि लद्दाख का रहने वाला है, मुझसे दस मीटर आगे चल रहा था। नवयुवक होने के कारण वह जिस शक्ति का प्रदर्शन दूसरे सदस्यों के लिए रास्ता बनाने में कर रहा था वह देखने लायक था। परंतु शक्ति तथा चढ़ने की योग्यता होने के बावजूद वह पूरी तरह से विश्वस्त नहीं था। इसलिए हम क्लाईम्बर को यह शिक्षा देते हैं कि वो सबके साथ इकट्ठे आगे बढ़े। कोई भी यह नहीं भूल सकता है कि पर्वत पर चढ़ना एक संपूर्ण दल का प्रयास है। यह किसी एक व्यक्ति का तमाशा नहीं हो सकता। मैं यह सोचता हूं कि यह बात उसके दिमाग में भी थी। इसलिए प्रत्येक 5 मीटर की चढ़ाई के बाद वह पीछे देख रहा था और यह सुनिश्चित कर रहा था कि दूसरे भी उनका अनुसरण कर रहे हैं। शिखर तक पहुंच कर सुरक्षित कैंप में वापिस आने तक के लिए यद्यपि हम सभी पर्याप्त ऑक्सीजन की बोतलें उठाए हुए थे परंतु उसके रिसने, ज़रूरत से ज़्यादा खपत होने का डर हमारे दिमाग में बराबर बना हुआ था। इसलिए चढ़ने के दौरान ऑक्सीजन की कम से कम खपत हो इसके लिए प्रयास किए जा रहे थे परंतु कभी कभी इसके लिए किसी को भारी मूल्य भी चुकाना पड़ सकता था। इसका अनुभव मैं स्टेप 2 (28600 फीट) पर चढ़ते समय सबसे कठिन हिस्से से झूमने के दौरान कर चुका था। मुझे वह प्रत्येक क्षण अभी भी ठीक उसी प्रकार याद है जैसे यह मेरे साथ आज ही घटित हो रहा हो। मुझे याद है कि मेरा गला ऑक्सीजन की कमी तथा घुटन के कारण सूखना शुरू हो गया था। यहां तक उस समय कुछ क्षणों के लिए शायद दिमाग ने भी काम करना बंद कर दिया था। परंतु फिर मैंने पाया कि मैं भी मृत्युमंडल क्षेत्र में था। इसलिए इस कठिनाई पर विजय प्राप्त करने के लिए कुछ अधिक प्रयास करने की ज़रूरत है। किसी प्रकार मेरी इंद्रियां प्रबल हुई और मैं स्टेप 2 पर लगाई गई एल्यूमीनियम की सीढ़ी पर झूमते हुए 15–20 कदम चढ़ सका। कोई क्लाईम्बर स्टेप 2 पर लगी सीढ़ियों का प्रयोग किए बिना ऐवरेस्ट को नापने की सोच भी नहीं सकता। मैं उन चीनियों को धन्यवाद देता हूं जिन्होंने सन 1974 में पहली बार उन सीढ़ियों के टुकड़ों को कठिन रास्ते को तय कर वहां लगाया। अब वहां एक व्यक्ति के द्वारा बदल कर नई सीढ़ी लगा दी गई है जो पिछले 10 सालों से हर साल धरती पर उच्चतम अटारी पर चढ़ने के लिए दल ले जा रहा है। स्टेप 2 (28700 फीट) के ऊपर पहुंचने पर नवांग ने मुझे पानी की बूंद दी। जिससे मुझे तुरंत शक्ति प्राप्त हुई। तुरंत ही कुछ क्षणों के बाद दल के अन्य सदस्य भी हममें शामिल हो गए। हम सभी ने ऑक्सीजन की दूसरी बोतल को लगा दिया। मैंने दल नेता होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति को चारों तरफ से देखा कि वे अच्छा महसूस कर रहे हैं या नहीं और आगे चढ़ने की स्थिति में हैं या नहीं। मुझे उससे संतुष्टि मिली जब मैंने प्रत्येक सदय के अंदर ऐवरेस्ट के इतने पास होने पर हो रही उत्तेजना को अनुभव किया। जैसे कि मैंने पहले बताया कि मौसम धीरे धीरे सुधरना शुरू हुआ तथा हम एक एक करके संसार के सबसे ऊंचे शिखर के समीप जा रहे थे। वहां पर चार पांच अन्य व्यक्ति भी थे जो कि हमसे आगे चढ़ रहे थे तथा धीरे धीरे हम भी शिखर के ठीक नीचे तक पहुंच सके। सुबह साढ़े आठ बजे नवांग और मैं अपने दल में आगे थे जो चढ़ाई के आखिरी पड़ाव में पहुंचे। वास्तव में उस केन्द्र से ऐवरेस्ट के शिखर का सुंदर व पूर्ण दृश्य दिख सकता है। यहां तक कि मैं उस चोटी की सुंदरता का वर्णन शब्दों में

नहीं कर सकता। मैं उस शक्तिशाली ऐवरेस्ट को देख व निहार रहा था जिन्हें नेपाली तथा चीनी अलग–अलग नाम से पुकारने के साथ सबसे शक्तिशाली मानते हैं। कोई भी वहां एक जगह पर ज़्यादा देर खड़ा नहीं रह सकता। कुछ मिनट बाद हमने दूसरों की प्रतीक्षा किए बिना चढ़ाई के आखिरी चरण पर चढ़ना जारी रखने का निर्णय लिया। हमें पता था कि शिखर पर तस्वीर खींचने, वीड़ियो बनाने तथा प्रार्थना आदि करने में 25 से 30 मिनट तक लगे। इसलिए जितनी जल्दी संभव हो उतना जल्दी शिखर पर पहुंचना हमारी प्राथमिकता थी। 10 मीटर नीचे हमें लगभग 15 मिनट तक इंतज़ार करना पड़ा ताकि अन्य दल के सदस्य जो पहले ही शिखर पर पहुंच चुके थे नीचे आ जाएं क्योंकि शिखर पर बहुत ज़्यादा जगह नहीं थी। इसी बीच हमारे बाकी सदस्य भी हमसे मिल गए। सुबह ठीक साढ़े नौ बजे हम सभी शिखर पर पहुंचने में सफल हुए। हममें से प्रत्येक के लिए यह बहुत बड़ा क्षण था। हम में से कुछ भावुक हो गए और सदस्यों के चश्मों के बीच से उनके आंसू देखे जा सकते थे। हम में से कुछ उत्तेजित हुए तथा चिल्लाना आरंभ किया भारत माता की जय, आई.टी.बी.पी. की जय तथा महानिदेशालय भारत तिब्बत सीमा पुलिस बल की जय और अन्य उद्घोष। परंतु दल का वरिष्ठतम सदस्य होने के नाते मैं सबको सामान्य रखने की कोशिश कर रहा था परंतु मैं भी खुशी और आनन्द के मारे अपने आंसुओं को नहीं रोक सका। नवांग और जोत अलग अलग कोणों से तस्वीरें लेने की कोशिश कर रहे थे। मैं बुद्धिस्ट होने के नाते अपने साथ एक खतक (सफेद स्कार्फ) प्रार्थना वाले झण्डों का संग्रह तथा थंका (भगवान बुद्ध व दलाई लामा जी की तस्वीरें) अपने साथ ले गया था, के साथ हमने कुछ क्षणों के लिए शिखर पर प्रार्थना की। दल का नेता होने के नाते लगातार अंतरालों पर चढ़ाई की उन्नति के बारे में अपने नेता को सूचित करना मेरी ज़िम्मेदारी थी। इस प्रकार तुरंत नेता को Walkie-Talkie set तथा सैटलाईट फोन के द्वारा सूचित किया। मैं, नेता तथा बेस कैंप पर अन्य सदस्यों की उत्तेजना को अनुभव कर सकता था। तब नेता ने मुझे दिल्ली में बैठे डी.जी., आई.टी.बी.पी. से बात करने को कहा। किसी तरह से मैंने डी.जी. साहब से बात की। महोदय को अपनी जीत के बारे में बताया। मैंने उन्हें दल के सभी सदस्यों का हाल चाल बताया कि हम सभी यहां पर बिलकुल ठीक हैं। उन्होंने मुझे शिखर से उतरते समय बहुत सतर्क रहने के लिए कहा। संसार के सबसे ऊंचे शिखर पर आधा घंटा बिताने के बाद हमने धीरे धीरे उतरना शुरू किया। साढ़े ग्यारह बजे तक हम सभी स्टेप 2 पर थे और एक घंटे में हम द्वितीय स्टेप के बेस पर थे। अब प्रत्येक व्यक्ति ने एक बड़े आराम की सांस ली, क्योंकि यह सबसे बड़ी बाधा थी जिसके बारे में हम सभी चौकन्ने थे। धीरे धीरे एक के बाद एक शिखर कैंप (27000 फीट) पर पहुंचना आरंभ किया। परंतु श्री किशन जो कि सी.आर.पी.एफ. से अकेला सदस्य था, दिखाई नहीं दिया था। तुरंत ही तीन सदस्यीय बचाव दल जो कि शिखर कैंप पर हमारी सहायता के लिए था को श्री किशन को खोजने के लिए भेजा गया। परंतु वह कहीं भी दिखाई नहीं दिया। इतनी बड़ी सफलता का आनंद भी महसूस नहीं कर पाए थे कि पता चला कि श्री किशन का कहीं पता नहीं चल रहा है और शायद अब हमारे बीच रहे नहीं। इस सदमे को झेलना बहुत कठिन था परंतु शायद भगवान हम सबकी परीक्षा ले रहे थे। इस प्रकार हमने एक नौजवान, मज़बूत, ऊर्जावान तथा दल के होनहार क्लाईम्बर में से एक को खो दिया। इस सत्य को पचा पाना कि वह हमारे साथ नहीं है बहुत मुश्किल था परंतु सत्य तो सत्य ही है। वह एक महान

क्लाईम्बर के साथ साथ एक अच्छा इंसान भी था। जब मैं एम॰ एण्ड॰ एस॰ आई॰ औली में उप सेनानी प्रशिक्षण के पद पर तैनात था तब मैंने उन्हें प्रशिक्षण दिया था। उन्होंने मेरे साथ लेह लद्दाख की स्टॉक कांगड़ी चोटी पर सर्दियों में अपने पर्वतारोहण जीवन की पहली चढ़ाई की थी इसलिए मैं अपनी शिखर यात्रा को श्री किशन को समर्पित करता हूं जो कि अब हमारे साथ नहीं है।

आठ सदस्यों का दूसरा दल जिसमें एक महिला सदस्य तथा दो शेरपा शामिल थे, ने 15 मई, 2006 को निरीक्षक हीराराम के नेतृत्व में शिखर के लिए प्रस्थान किया। इस दल की संरचना भी बहुत अच्छी थी। जिसमें नौजवान तथा अनुभवी सदस्य शामिल थे। दल के तीन सदस्य किन्हीं समस्याओं के चलते एडवांस बेस कैंप पर वापिस लौट गए। परंतु हीरा, अली, प्रदीप तथा दो शेरपाओं ने चढ़ाई जारी रखी। 17 मई, 2006 को सुबह दस बजे ये सभी विश्व के सबसे ऊंचे शिखर पर पहुंचने में कामयाब रहे। इस तरह अभियान दल कुल दस सदस्यों तथा चार शेरपाओं को दुनियां की सबसे ऊंची चोटी ऐवरेस्ट के शिखर पर न केवल पहुंचाने में सफल रहा अपितु एक नया रिकॉर्ड बनाने में सफल हुआ।

पर्वतारोहण में बहुत सारे कीर्तिमान बने जिनको मैं यहां बताना चाहूंगा –

1 निरीक्षक वांगचुक शेरपा ऐवरेस्ट पर दो बार तथा कंचनजंघा पर एक बार चढ़ने वाले पहले भारतीय व्यक्ति बने।

2 निरीक्षक हीरा राम ऐवरेस्ट पर दो बार चढ़ने वाले ऐसे व्यक्ति बन गए हैं जो एक ही रास्ते से एक ही तिथि (10.5.1996 और 10.5.2006) में दो बार पहुंचे।

3 दल ने ऐवरेस्ट के शिखर पर 10 सदस्य तथा चार शेरपाओं को पहुंचाने में नया कीर्तिमान हासिल किया।

4 श्री किशन ऐसे प्रथम व्यक्ति बने जिन्होंने सी.आर.पी.एफ. की ओर से ऐवरेस्ट पर फतेह हासिल की।

5 मुझे ऐसे प्रथम पुलिस अधिकारी बनने का गौरव प्राप्त हुआ जिसने ऐवरेस्ट को दो बार (10.05.1992 और 14.5.2006) को चढ़ने में सफलता हासिल की।

सेनानी,
19वीं वा॰, भा॰ति॰सी॰ पुलिस।

पतितपावन नीलकंठ महादेव धाम की यात्रा

—विकास ओथङबा

भगवान शिव को समर्पित नीलकंठ धाम एवं पवित्र झील स्वङलो पट्टन घाटी के गांव च़ौखङ—नेनगाहर के गाहर में नैसर्गिक सौन्दर्य और अलौकिक वातावरण के मध्य अवस्थित है। इस धाम की खोज के सम्बन्ध में जनश्रुति है कि प्राचीन काल में गद्दी समुदाय से संबंधित किसी व्यक्ति को गाहर में भेड़—बकरियां चराते हुए एक सुन्दर झील दिखाई दी। अभी वह झील को एक टक देख ही रहा था कि अचानक उसे झील के पानी से एक याक निकलता हुआ दिखाई दिया और यह चामत्कारिक घटना उसने वहां के स्थानीय निवासियों को बताई, उत्सुकतावश एक बुजुर्ग अपने आप को रोक नहीं पाया और वह चमत्कारिक झील को देखने के लिए गद्दी द्वारा बताई जगह पर पहुंच गया। उसे वहां पर कोई चमत्कार होता हुआ तो नहीं दिखाई दिया लेकिन दिव्य अलौकिक वातावरण के दर्शन कर जब वह घर लौटा तो कुछ समय उपरान्त उनके घर में गाय ने एक शारे चितकवरी चूरी को जन्म दिया इसके पश्चात अन्य लोगों के घरों में भी दूध की धारा बहने लगी। जिसके परिणामस्वरूप पूरे इलाके में ख्याति फैल गई। लेकिन प्राकृतिक कारणों के चलते आज उस धाम एवं झील के सिर्फ अवशेष बच पाए हैं लेकिन उससे कुछ दूरी पर अवस्थित पवित्र झील जिसे वर्तमान में नीलकंठ धाम के नाम से जाना जाता है को भी वही दर्जा हासिल है अर्थात स्वयंभू भगवान शिव इस में निवास करते हैं, ऐसी लोगों की धारण है। हर साल सैंकड़ों की संख्या में यात्री विभिन्न प्रकार की मनोकामनाएं लिए इस पवित्र धाम की यात्रा कर धन्य हो जाते हैं लेकिन प्राचीन स्वड.लो मान्यतानुसार जैसे ड़ड़िउ—केलाश यात्रा मुख्यतः संतान प्राप्ति के लिए होती है, वैसे ही यह यात्रा मुख्यतः चुरपुर (घर में हमेशा दूध, दही एवं घी का भंडार बना रहे अर्थात दूध की धारा सदा बहती रहे) के लिए होती है। तीन दिन तक चलने वाली यह यात्रा कमरिड. गांव से शुरू होकर च़ौखङ—नेनगाहर गांव होते हुए पवित्र झील एवं नीलकंठ महादेव धाम पहुंचकर सम्पन्न होती है।

पहला दिन – प्राचीन समय में यह यात्रा पैदल चलकर कमरिड. गांव से प्रारम्भ होती थी लेकिन अब संपर्क सड़क के बन जाने के पश्चात यात्री बस या निजी वाहनों के द्वारा अपनी यात्रा प्रारंभ करते हैं। बड़ी गाड़ियों के लिए सड़क अभी सिर्फ च़ौखङ गांव तक ही है लेकिन छोटी गाड़ियों के माध्यम से नेनगाहर तक पहुंचा जा सकता है अर्थात यात्री क्रमानुसार गांव कमरिड., च़ौख्ड, छ़ोगज़िङ, ग्वड़ि होते हुए गांव नेनगाहर पहुंचते हैं और वहीं पर रात्रि विश्राम करते हैं।

दूसरा दिन – नेनगाहर गांव में रात्रि विश्राम के पश्चात् सुबह होते ही यात्री अपनी आगे की यात्रा आरंभ कर देते हैं। स्थानीय मान्यता है कि इस यात्रा में स्त्रियों का जाना निषिद्ध है क्योंकि इससे मार्ग में कई अनहोनी घटनाएं घटती हैं। लेकिन यह बात भी अटल सत्य है कि ईश्वर के दरबार में सब समान हैं, और निर्मल व पवित्र मन से की गई यात्रा हमेशा कल्याकारी होती है। यात्री अपने भोजन व सोने के लिए राशन, बिस्तर इत्यादि साथ लेकर जाते हैं।

प्राकृतिक नज़ारों का आनन्द लेते हुए यात्री अब अल्यास नामक स्थान पर पहुंचते हैं। इसी स्थान से पवित्र नीलकंठ झील के पीछे अवस्थित कैलाश पर्वत तुल्य हिमाच्छादित पर्वत की चोटी का नयनाभिराम दृश्य दष्टिगोचर होता है। यात्री बताते हैं कि इस हिमाच्छादित पर्वत शिखर का सौंदर्य सूर्योदय और सूर्यास्त के समय देखने योग्य होता है। इस दिव्य प्राकृतिक सौंदर्य का आनन्द लेने के पश्चात् यात्री इसी स्थान पर एक प्राकृतिक गुफा में रात्रि विश्राम करते हैं।

तीसरा दिन – अल्यास में रात्रि विश्राम के पश्चात सुबह होते ही यात्री राशन इत्यादि वहीं पर रखकर सिर्फ पूजा–पाठ की सामग्री और हलवा–प्रसाद तैयार करने में प्रयुक्त होने वाली सामग्री इत्यादि लेकर अपनी आगे की यात्रा आरम्भ कर देते हैं। प्रभु से मिलन की चाह अपने मन में लिए हुए यात्रियों को पता ही नहीं चल पाता कि वह कब पवित्र झील एवं नीलकंठ महादेव धाम पहुंच गए। वहां पहुंचकर यात्रियों को असीम शांति एवं आनन्द की अनुभूति होती है। झील का स्वच्छ निर्मल जल जो कि बिल्कुल नीला दिखाई पड़ता है, के एक ओर शिवाजी का थान (मंदिर) अवस्थित है जबकि दूसरी ओर झील के साथ एक विशाल शिलाखण्ड अवस्थित है जो कि शिवलिंग का सा आभास देता है। ध्यान से देखने पर यह शिलाखंड भगवान शिव के गले में सदा विराजमान रहने वाले वासुकी नाग जैसा प्रतीत होता है। इस शिलाखण्ड के पीछे एक हिमाच्छादित पर्वत शिखर दिखलाई पड़ता है जो कि पवित्र कैलाश पर्वत का सा आभास दिलाता है। यह वही पर्वत शिखर है जिसका प्रथम दर्शन यात्रियों को अल्यास नामक स्थान से होता है। इसके अतिरिक्त इस पवित्र निर्मल नीले रंग के झील में शिलाखण्ड और पर्वत शिखर के दिव्य दर्शन होते हैं अर्थात उनका प्रतिबिम्ब झील के स्वच्छ जल के सतह पर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। यात्री इसी पवित्र झील के किनारे कुछ देर विश्राम करते हैं, तत्पश्चात पवित्र झील की परिक्रमा का समय आता है जिसे कुछ ही यात्री पूरा करते हैं क्योंकि इस पवित्र झील की परिक्रमा बहुत कठिन एवं जोखिम भरा है। परिक्रमा पूर्ण करने के पश्चात सभी यात्री इस पवित्र गंगा तुल्य झील में स्नान करते हैं। तत्पश्चात झील के किनारे अवस्थित शिवजी के मंदिर में धूप, अगरबत्ती, फूल, फल व प्रसाद इत्यादि के द्वारा प्रभु का गुणगान करते हुए जन्म–जन्म के पापों से मुक्ति की मंगलकामना करते हैं। तदोपरांत पूजा–पाठ संपन्न होने के साथ यात्री प्रसाद इत्यादि आपस में बांटते हैं और पवित्र झील का पवित्र गंगा तुल्य जल अपने–अपने घरों में छिड़काव व रखने के लिए छोटे–छोटे वर्तनों में भरते हैं ताकि घर में दूध की धारा सदा बहती रहे और घर में सुख–शांति एवं समृद्धि सदा बनी रहे। अब यात्री अपने प्रभु को कोटि–कोटि नमन कर इस पावन पवित्र एवं अलौकिक धाम नीलकंठ महादेव धाम से अपनी वापिसी की यात्रा आरंभ करते हैं और फिर अल्यास, नेनगाहर, ग्वाड़ि चौखङ और कमरिङ गांव होते हुए यात्री अपने अपने गन्तव्य स्थानों की ओर खुशी–खुशी प्रस्थान कर जाते हैं। इस प्रकार नीलकंठ महादेव धाम की तीन दिन की पवित्र यात्रा संपन्न होती है।

भौतिकता और अध्यात्म

–सुखदास चित्रकार

आज का युग आश्चर्यजनक तरक्की का युग है। वैज्ञानिक और भौतिक दृष्टि से आकाश में मछलियों की तरह तैरना और समुद्र की गहराइयों को नापना, चाँद–सितारों पर उतरना, आज परियों की कहानी नहीं रही बल्कि एक सत्य घटना के रूप में सामने आ गई है। हज़ारों मील दूर घटित होने वाली घटनाओं को घर बैठे देखना और दूर की बातों को ज्यों का त्यों सुनना, हज़ारों मील की यात्रा को चंद घंटों में तय करना तथा असाध्य रोगों का इलाज करना आज के युग में एक साधारण सी बात हो गई है। यदि संसार में शांति बनी रहे, और वैज्ञानिक अनुसंधान और खोज का वातावरण बना रहा तो आने वाले समय में वैज्ञानिक क्षेत्र में कल्पनातीत उन्नति हो सकती है।

मगर अनुभव यह बताता है कि भौतिक उन्नति के साथ–साथ परेशानियों का अम्बार भी लगातार बढ़ता जा रहा है। अनिद्रा का रोग, विशेषकर शहरी क्षेत्रों में बढ़ता जा रहा हैं। जो कि विशुद्ध मानसिक रोग है। मनोविज्ञानयों का मत है कि अनिद्रा कोई रोग नहीं है बल्कि यह एक मानसिक रोग है, जो कि काल्पनिक है।

याद रहे, निद्रा प्रकृति की एक महान देन है, राजा–रंक, अमीर–गरीब, स्त्री–पुरुष, बाल–बालिकाएं, यहां तक कि सभी प्राणी मात्र को स्वभावतः प्राप्त है। इसकी अनुपस्थिति एक अभिशाप से कम नहीं है। आज की उन्नति के दौर में मनुष्य का अधिक भाग इस सुख से वंचित होता जा रहा है। एक तरफ भौतिक सुख सुविधा का अंबार लग रहा है तो दूसरी तरफ इसी अनुपात में परेशानियां भी बढ़ रही हैं, आज युद्ध का भय व्याप्त है। परमाणु विस्फोट की संभावनाओं का खतरा है तो दूसरी ओर एड्स जैसे रोगों का भय मंडरा रहा है। वास्तव में भौतिक सुख सुविधाओं के साथ–साथ चाह की पूर्ति संभव नहीं है। यह उस भिक्षा पात्र के समान है जिस का कोई पेंदा नहीं है। भरते जाओ वह खाली ही रहेगा। वह अंहकार की दौड़ है, सुखी होने की चाह है। हर तरफ चाह की दौड़ है। इसी दौड़ से आज का मानव खिन्न है।

इन परेशानियों के समाधान की संभावना आध्यात्मिक दृष्टिकोण में निहित है इसी की खोज के संदर्भ में ज्ञान, कर्मयोग और भक्ति का सहारा लिया गया है। देश काल, और परिस्थितियों के कारण इसके विधि–विधान में अंतर हो सकता है, मगर मुख्य लक्ष्य एक ही है। साधन भिन्न–भिन्न हो सकते हैं, मगर साध्य एक ही है। आध्यात्मिकता का अंतिम लक्ष्य परमात्मा एक है, वह अद्वितीय है, निराकार है, निरपेक्ष है। अंत में वह नेति–नेति है, शून्य है। भिन्नताएं प्रकृति जन्य हैं, वास्तव में एक ही की यह तमाम लीलाएं हैं।

अनेकता में एकता को देखना ही आध्यात्मिक का दृष्टिकोण है। जहां एकता है वहां भय और शत्रुता का अभाव है, जहां मैत्री भाव है, वहां सुख और शांति है। शरीर भिन्न है पर इसमें व्याप्त तत्व भिन्न–भिन्न होते हुए भी एक है, आनन्द की अभिव्यक्ति भिन्न–भिन्न होते हुए भी, वह एक है। इस आनन्द की तलाश ही आध्यमिकता का मूल है।

अतः जीवन रूपी रथ को सुचारू एवं सुन्दर ढ़ंग से चलाने हेतु दो पहियो, यानि भौतिकता और आध्यात्मिकता दोनों की नितान्त आवश्यकता है। इन में से एक के अभाव में भयानक परिणाम सामने आ जाते हैं।

ऊँ शान्ति! शान्ति! शान्ति!

एक कला ही तो है व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास

–सीता राम गुप्ता

जिस प्रकार पत्थर, धातु या मिट्टी से मूर्ति बनाना एक कला है उसी प्रकार व्यक्तित्व का विकास भी एक कला है। पत्थर की मूर्ति को ही लीजिए। एक कलाकार अथवा शिल्पी पत्थर के टेढ़े–मेढ़े टुकड़े या शिलाखण्ड से एक सुंदर प्रतिमा का निर्माण करता है। इस प्रक्रिया में वह क्या करता है? पत्थर में मूर्ति के अतिरिक्त जो फालतू पत्थर है उसको काटकर अलग कर देता है। थोड़े अभ्यास की ज़रूरत है बस, और मूर्ति तैयार। जिसने पत्थर में छिपी मूर्ति को खोजने का गुण सीख लिया वह एक बड़ा कलाकार बन गया। हर पत्थर में छिपी सुंदर प्रतिमा की तरह ही हर व्यक्ति में भी एक प्रभावशाली व्यक्तित्व उपस्थित है। आवश्यकता है तो बस उसे देखकर काटने छांटने की, उसे उभारने की तथा प्रकट करने की।

हर व्यक्ति में कुछ अच्छाइयां हैं तो कुछ बुराइयां भी। मनुष्य की अच्छाइयां ही उसके प्रभावशाली व्यक्तित्व का निर्माण करती हैं लेकिन साथ ही उसकी बुराइयों की वजह से उसके व्यक्तित्व का वास्तविक स्वरूप उभरकर सामने नहीं आ पाता। यदि इन बुराइयों की पहचान कर मूर्ति निर्माण प्रक्रिया में फालतू काटकर अलग कर देने की तरह बुराइयों को भी हटा दिया जाए तो एक अत्यंत प्रभावशाली व्यक्तित्व उभर कर सामने आ जाएगा। हम दिन भर अनेकानेक कार्य करते हैं। हमारे कार्यों की सूची बहुत लंबी होती है। सारे दिन व्यस्त रहते हैं फिर भी कार्य पूरे नहीं होते। कुछ कार्य ऐसे होते हैं जो हमारे स्वयं के लिए तथा समाज और राष्ट्र के लिए उपयोगी होते हैं जबकि अनेकानेक कार्य ऐसे भी होते हैं जिनके करने से न तो हम स्वयं लाभान्वित होते हैं और न समाज और राष्ट्र ही। ऐसे निरर्थक कार्यों की पहचान कर यदि हम उनसे छुटकारा पाने का प्रयास करें तो हमारे पास समय की कमी नहीं रहेगी और सभी ज़रूरी कार्य समय पर पूरे हो सकेंगे।

रोज़मर्रा की ज़िंदगी में घंटों टीवी के सामने बैठे रहना, टेलीफोन की लंबी बातचीत करना, समाचार पत्र को शुरू से आखिर तक पूरा पढ़ना या जो पुस्तक हाथ आए उसे पढ़ना शुरू कर देना ऐसे ही कार्य हैं जो अनुपयोगी और निरर्थक हैं। इन सभी कार्यों के लिए आवश्यकता से अधिक समय नष्ट न करें तथा जो स्वयं से संबंधित है उसी समाचार या पत्र पत्रिका को पढ़ें। पुस्तकों, पत्र–पत्रिकाओं तथा रेडियो–टीवी के कार्यक्रमों का उचित चुनाव करें। यदि सारे दिन टीवी के सामने बैठे रहेंगे तो ज़रूरी काम कैसे पूरे होंगे? इनसे संबंधित फालतू चीज़ों को हटा देने से हमारे समय की बचत ही होगी। बचे हुए समय का उपयोग कामों में लगाकर व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना संभव है।

वास्तुशास्त्र इसी सिद्धांत पर आधारित है कि घर या कार्यालय में बेकार चीज़ों के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए। हमारे कार्य करने के स्थान पर, हमारी आंखों के सामने केवल उपयोगी वस्तुएं ही होनी चाहिए। ढ़ेर सारी अव्यवस्थित चीज़ें काम में रुकावट पैदा करती हैं। उनके हटा देने से कार्य करने में आसानी होती है तथा कार्य अच्छी प्रकार होता है। बेकार चीज़ों की तरह बेकार काम भी हमारी कार्यकुशलता को बाधित करते हैं और हमारी कार्यकुशलता हमारे व्यक्तित्व को प्रभावित किए बिना नहीं रह सकती। व्यक्तित्व के निर्माण के लिए बेकार की चीज़ों से छुटकारा पाना अनिवार्य है चाहे वे वस्तुएं हों, कार्य हों अथवा मनोभाव।

बेकार के कामों के साथ–साथ बेकार के मनोभावों से मुक्ति पाना भी ज़रूरी है। हमारे व्यक्तित्व के विकास में सबसे बड़ी बाधा हमारे नकारात्मक भाव ही होते हैं। हमारे मन के भाव ही अंततोगत्वा हमारे कर्म में परिणत हो जाते हैं। इसके लिए भावशुद्धि या विचारों का परिकार अनिवार्य है। भावशुद्धि के लिए भी कलाकारी की ज़रूरत है। धातु की मूर्तियां बनाने के लिए एक कलाकार पहले धातु को गरम करके पिघलाता है और फिर उसे मनचाहे आकार के सांचे में ढ़ालकर अपेक्षित आकार की प्रतिमा प्राप्त कर लेता है। विचारों को सही आकार देने का भी यही तरीका है। हमारा मन एक सांचा ही तो है जिसमें विचार आकार पाते हैं, अतः शांत स्थिर होकर मन में केवल सकारात्मक उपयोगी विचार लाएं। बार–बार ऐसा करने से वे दृढ़ हो जाएंगे और आपकी आदत बन कर आपके व्यक्तित्व को नया रूप दे सकेंगे।

कल्पना या चाक्षुशीकरण द्वारा किसी भी विचार को स्थायित्व प्रदान कर उसे भौतिक स्वरूप दिया जा सकता है। एक चित्रकार कैनवस पर रेखाओं और रंगों की सहायता से चित्र बनाता है। हमारा मन भी एक कैनवास की तरह ही है। उसको भी कल्पना के रंगों से सजाना अनिवार्य है। रंग जितने गहरे और चटख होंगे चित्र उतना ही आकर्षक होगा। हल्के और अस्पष्ट रंगों का प्रयोग तो दुःख, विषाद, पीड़ा, खिन्नता, शोषण आदि नकारात्मक भावों और विषयों की अभिव्यक्ति के लिए किया जाता है। इसी प्रकार कल्पना जितनी अस्पष्ट होगी उस के परिणाम भी उसी तरह होंगें अस्पष्ट, संदिग्ध अथवा नकारात्मक। कल्पना–चित्र अथवा चाक्षुशीकरण जितना अधिक स्पष्ट और रंगीन होगा वह उतना ही प्रभावशाली होगा तथा शीघ्र ही वास्तविकता में परिणत हो सकेगा। जब भी मन में विचार उठे केवल सकारात्मक विचार ही उत्पन्न हो और उसे मन की आंखों से जितना अधिक स्पष्ट और रंगीन हो सके, बार बार देखें। पहले चित्र की तरह, फिर चलचित्र की तरह, एक सवाक फिल्म की तरह। उसी का एक हिस्सा बन जाएं। उसी में खो जाएं। यह प्रक्रिया आपके सपनों को साकार कर देगी, उन्हें वास्तविकता में बदल देगी।

व्यक्तित्व विकास से तात्पर्य है पूर्ण और संतुलित विकास। जीवन के हर क्षेत्र में संतुलन होना अनिवार्य है। व्यक्ति के शारीरिक विकास के साथ–साथ उसका मानसिक तथा बौद्धिक विकास होना ज़रूरी है। केवल शारीरिक या मानसिक अथवा बौद्धिक विकास होना संपूर्ण व्यक्तित्व का विकास नहीं माना जा सकता है। उसके बाह्य और आन्तरिक व्यक्तित्व का समान रूप से विकास होना अनिवार्य है अन्यथा जीवन में संतुलन नहीं पैदा किया जा सकेगा। जीवन में संतुलन पैदा करने के लिए भी कलाकार बनने की आवश्यकता है। मिट्टी की मूर्ति बनाने के लिए कुछ ज़्यादा नहीं करना पड़ता। सामग्री बेकार नहीं जाती। हमारे पास जितनी मिट्टी है सारी की सारी काम आ जाती है। करना यह है कि मूर्ति के अंगों के अनुपात में मिट्टी का प्रयोग करना है। जीवन में भी यही किया जाना चाहिए।

जीवन में संतुलन होना चाहिए। पहला कार्य है बेकार के कार्यों तथा नकारा वस्तुओं से मुक्ति, दूसरा कार्य है उपयोगी भावों तथा वस्तुओं का सृजन तथा तीसरा कार्य है उपलब्ध साधनों का सही कार्यों के लिए विवेकपूर्ण उपयोग। यही आत्म प्रबंधन है, यही समय प्रबंधन है, यही समय प्रबंधन है तथा यही व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास तथा पुनर्निर्माण है।

एडी–106सीए पीतमपुरा,

आर्थिक विकास की अन्धी दौड़ में ग्राम–समाज में मानवीय मूल्यों का ह्रास

– ठिनले शाशनी

हिमाचल प्रदेश का जनजातीय क्षेत्र 'लाहुल' घाटी आज आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से उत्तरोत्तर विकास की ओर अग्रसर है, यह अत्यन्त शुभ लक्षण है। भौगोलिक रूप से अत्यन्त दूरस्थ इस घाटी के पूर्वजों ने लाहुल की आर्थिक और शैक्षणिक स्तर पर ऊंचाई छूने का स्वप्न तो अवश्य देखा होगा, किन्तु इतनी अल्प अवधि में उनका स्वप्न साकार हो जाएगा इस की कल्पना शायद ही की होगी। इस में कोई संदेह नहीं है कि आज सम्पूर्ण लाहुल घाटी का ग्रामवासी आर्थिक दृष्टि से किसी सीमा तक सम्पन्न है, किन्तु आर्थिक–सम्पन्नता की इस अंधी दौड़ में अपनी मौलिकता सहित बहुत कुछ खोता भी चला जा रहा है। सामाजिक विसंगतियों तथा स्वार्थों के कारण मानवीय सम्बन्धों में कटुता चरम सीमा पर पहुंच गई है। तृष्णा एवं मोहजनित सम्बन्धों के कारण नैतिकता और मानवता का ह्रास हो रहा है। इन सब पक्षों पर लाहुल के बुद्धिजीवी वर्ग में ही नहीं, अपितु जन–साधारण में भी गम्भीरता से विचार–विमर्श एवं आत्म–मंथन होना चाहिए, ताकि आर्थिक विकास के साथ–साथ सामाजिक सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक विकास भी हो, तभी लाहुल घाटी में विकास की सार्थकता सिद्ध होगी। विशेषकर, सामुदायिक जीवन के मानवीय मूल्यों में जो ह्रास आया है, वह अत्यन्त चिन्ता का विषय है।

आज लाहुल का ग्रामीण समाज विशेषकर कृषि एवं सरकारी नौकरियों की बदौलत चौतरफा आर्थिक विकास की ओर उन्मुख है। निश्चित रूप से इस का श्रेय यहां के मेहनतकश पुरुष एवं महिलाओं को जाता है। इस क्षेत्र के भौगोलिक विकास हेतु केन्द्रीय सरकार एवं राज्य सरकार ने भी पर्याप्त धनराशि मुहैया करवाई है। आज लाहुल का अधिकांश ग्रामीण क्षेत्र सड़क, बिजली, पेयजल, स्कूल अस्पताल आदि बुनियादी चीज़ों से वंचित नहीं है। शिक्षा की दृष्टि से देखें तो कोई भी परिवार ऐसा नहीं है कि जिसके बच्चे स्कूल पढ़ने न जाते हों। यद्यपि नई पीढ़ी के बच्चों को सरकारी स्कूलों की अपेक्षा कॉन्चेंट स्कूलों में शिक्षा देने का प्रचलन तेज़ी से चल पड़ा है। आज सरकारी प्राईमरी स्कूलों में बच्चों की संख्या दिन ब दिन कम होती जा रही है। बच्चों की संख्या की दृष्टि से कई स्कूलों की स्थिति इतनी दयनीय है कि यहां ग्रीष्मकाल में मज़दूरी हेतु आने वाले नेपाली बच्चों की सहायता से स्कूलों को संचालित रखा गया है। कई स्कूलों में अध्यापकों की तुलना में छात्रों की संख्या अत्यन्त नगण्य है। यद्यपि अध्यापन की दृष्टि से इन स्कूलों की दशा उतनी बुरी नहीं है, किन्तु प्रतियोगिता के इस दौर में सरकारी स्कूलों में भी अध्यापन का स्तर ऊँचा हो इस ओर स्थानीय शिक्षा विभाग को ध्यान देना होगा, ताकि उन स्कूलों में पढ़ने वाले शेष लाहुली बच्चे भी आगे बढ़ सकें।

निःसंदेह यहां के पारम्परिक ग्रामीण जीवन–स्तर में आशातीत परिवर्तन आया है। यहां का ग्रामीण–जीवन अब टेलीफोन, टेलीविजन, मोबाइल आदि आधुनिक संचारतन्त्रों एवं अन्य आधुनिक सुख–सुविधाओं से युक्त हो चुका है। दूसरी ओर परिवर्तन के इस दौर में यहां के लोगों के खान–पान में भी पर्याप्त परिवर्तन आ चुका है। आज यहां के अनेक पारम्परिक भोजन लुप्त होते

जा रहे हैं। मटर और आलू जैसी नकदी फसलों के कारण अनेक पारम्परिक फसलों की बीजाई समाप्त हो चुकी है। इन पारम्परिक भोजनों की जगह चावल, दाल, रोटी का ही अधिक प्रचलन है। स्थानीय खेतों में उगने वाले उच्च गुणवत्ता युक्त गेहूं के आटे की अपेक्षा मिलों के सुपर फाइन आटे की रोटियों का प्रचलन तेज़ी पर है। स्थानीय गेहूं की रोटियां जो पौष्टिकता एवं गुणवत्ता की दृष्टि से उच्च कोटि के हैं। यद्यपि थोड़े काले दिखते हैं, इसलिए यहां के लोग पसन्द नहीं करते हैं। इसलिए दिखने में सुन्दर किन्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त हानिकारक इस सुपर फाइन आटे का मोह त्याग नहीं पा रहे हैं। खेतों में पारम्परिक खाद की अपेक्षा रासायनिक खादों का उपयोग अधिक करने से न केवल खेतों की मिट्टी की दुर्दशा हुई है, अपितु यहां के अधिकांश लोग आज कल कैंसर जैसे अनेक खतरनाक रोगों से पीड़ित होते जा रहे हैं। इन सब खतरों को ध्यान में रखते हुए लाहुलियों को अपनी पारम्परिक भोजन के प्रति पुनः रुचि उत्पन्न करने की आवश्कता है।

यहां के लोगों की स्थानीय राजनीति में जागरूकता के रूप में परिवर्तन की एक और झलक देखने को मिलती है। पंचायतीराज के अन्तर्गत ज़िला परिषद् एवं स्थानीय पंचायत के चुनाव में अब यहां के लोग सक्रिय भाग लेने लगे हैं। वे इन शक्तियों से परिचित होने लगे हैं। इस कारण स्थानीय स्तर पर राजनीतिक गुटबाज़ी का दौर भी शुरू होने लगा है। इन गुटबाज़ियों का प्रभाव ग्राम्य–जीवन के वातावरण पर भी पड़ने लगा है। दूसरी ओर, पहले की अपेक्षा यहां की लड़कियां अब उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। यहां की महिला अपने अधिकारों के प्रति सचेत हैं। महिला मण्डलों की प्रासंगिकता यहां के समाज में बढ़ गई है। वे अपने अधिकारों के प्रति संघर्षशील हैं। पारम्परिक सामाजिक मान्यताओं का टूटना शुरु हो गया है। यहां की लड़कियां अब अपनी पसन्द से शादियां करने लगी हैं। बलात् विवाह की प्रथा आखिरी सांस ले रही है। यहां की लड़कियां अपनी अस्मिता की रक्षा के लिए कटिबद्ध हैं। टेलीविजन आदि संचार माध्यमों के प्रभाव के कारण यहां के युवक एवं युवतियों की जीवनशैली में भी आधुनिकता का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। बदलते परिवेश में ऐसा होना अस्वाभाविक तो नहीं लगता है, किन्तु नई पीढ़ी को यह भी चिन्ता करनी चाहिए कि पारम्परिक वेशभूषा का पूर्णतः त्याग न हो अन्यथा भविष्य में लाहुली अस्तित्व की पहचान करना कठिन हो जाएगा।

पर्यावरण के अन्ध दोहन के कारण विश्व में बदल रहे मौसम का असर घाटी पर भी पड़ा है, इसलिए इधर कई वर्षों से सर्दी के मौसम में बर्फ पड़ना कम हो गई है। ग्रीष्मकाल में गर्मी अधिक बढ़ गई है। इस कारण पहाड़ों की चोटियों में सदियों से स्थित विशाल हिमनदों का पिघलना तेज़ी से शुरू हो गया है। यद्यपि यह स्थिति समूचे हिमालय की है इस कारण निकट भविष्य में यहां के निवासियों को जल–स्रोत के संकट से जूझना पड़ेगा। सर्दियों में बर्फ कम पड़ने के कारण आज भी कई गांवों में सिंचाई एवं पेयजल की समस्या बरकरार है। इस प्रकार धीरे–धीरे यहां का मौसम भी मैदानी इलाकों की तरह बनता जा रहा है। जो चिंता का विषय है। कुछ वर्ष पूर्व तक लाहुलियों ने भी अज्ञानता एवं स्वार्थवश ईंधन एवं गृह–निर्माण हेतु वृक्षों की कटाई बहुतायत में की है। किंतु 15–20 वर्षों से जंगलात महकमे की पहल तथा पर्यावरण के प्रति स्थानीय लोगों की जागरूकता के कारण वृक्षों की कटाई पर रोक लगी है। इसका लाभ यह हुआ कि आज फिर से इन वीरान जंगलों में वृक्षों की हरियाली दिखने लगी है। वैसे भी यहां के लोग पर्यावरण के प्रति

काफी सचेत नज़र आते हैं। क्योंकि प्राचीन समय में पहाड़ के लोग प्रकृति प्रदत्त चीज़ों के प्रति स्नेह एवं आस्था रखते आए हैं दूसरी ओर पेड़–पौधे उनके घरेलू जीवन में अर्थात जानवरों के लिए चारा एवं ईंधन के रूप में अत्यंत उपयोगी होने से पेड़ पौधों के संरक्षण में अत्यन्त रुचि रखते हैं।

यहां के मौसम में व्यापक परिवर्तन होने से इसका तात्कालिक असर यह देखने को मिलता है कि यहां बनने वाले नए मकान प्रायः पारम्परिक शैली से हटकर मैदानी इलाकों की तरह सीमेंट, छड़ और कंकरीट आदि के साथ आधुनकि शैली में बनने लगे हैं। यहां के पूर्वजों ने वास्तु शास्त्र, मौसम के हालात, प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा एवं मकान निर्माण हेतु आवश्यक चीज़ों की उपलब्धता आदि को ध्यान में रखकर, वर्षों के भौगोलिक अनुभव के आधार पर पारम्परिक मकान निर्माण की जो शैली विकसित की है, अब धीरे–धीरे अपना अस्तित्व खोती जा रही है। इसलिए लाहुल की पारम्परिक भवन–निर्माण शैली जो वास्तुकला की दृष्टि से अपनी एक पहचान रखती है, को लुप्त न होने देकर आधुनिकता और प्राचीनता दोनों के आधार पर संतुलित करने की आवश्यकता है।

यद्यपि यहां के लोग भौतिक दृष्टि से जीवन के हरेक क्षेत्र में विकास कर रहे हैं। किंतु भोगवादी संस्कृति की गिरफ्त में अर्थ का उपार्जन ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य बनता जा रहा है जो चिंता का विषय है। हम सभी जानते हैं कि जीवन में भौतिकता के साथ–साथ आध्यात्मिकता की भी उतनी ही आवश्यकता है; क्योंकि जीवन में सुख के दो आयाम हैं मानसिक सुख और शारीरिक सुख। चित्त, जिसका चरम विकास अध्यात्म की प्रकर्षता है, यही वास्तव में स्थाई मानसिक सुख देने में समर्थ है और शारीरिक सुख जो भौतिक संसाधनों की उपलब्धता के आधार पर प्राप्त की जा सकती है, वह अस्थायी सुख है। वास्तव में मानसिक और शारीरिक सुख दोनों का संतुलित एवं समन्वित रूप ही जीवन की संपूर्णता है, जो व्यक्ति और समाज को सुखी बना सकता है। जीवन में इन दोनों को अन्धानुकरण न करते हुए तर्क, विश्लेषण एवं अनुभव के आधार पर अपनाना चाहिए।

भौतिकता के प्रति समर्पण एक छोर है और सब कुछ त्याग कर आध्यात्मिकता के प्रति समर्पित हो जाना दूसरा छोर है। किसी भी चीज़ के प्रति अतिरेक नुकसानदेह होता है। इन दोनों में बुद्धिमत्तापूर्वक संतुलन आवश्यक है, अन्यथा व्यक्ति एवं समाज दोनों मृग–मरीचिका रूपी सुख के चक्कर में पड़ कर अपने अमूल्य जीवन का सर्वनाश कर ह्रास की ओर उन्मुख होंगे। इसलिए दोनों में संतुलन रखते हुए आदर्श जीवन को परिभाषित करने के लिए मध्यम मार्ग का चयन अत्युत्तम है। संभवतः यही नैसर्गिक सत्य भी है। अध्यात्म का अर्थ केवल धार्मिक कर्मकाण्ड करते रहना नहीं है। अध्यात्म का केन्द्रबिन्दु चित्त है। यद्यपि चित्त प्रधान है, किन्तु चित्त के साथ–साथ काय (शरीर) और वाक् (वाणी) की भी उतनी ही महत्ता है। व्यक्ति के द्वारा अकुशल और कुशल कर्म की निशपन्नता काय, वाणी तथा चित्त से होती है। यही कुशलता या अकुशलता व्यक्ति के सुख तथा दुःख का कारण बनती है। जहां तक हो सके किसी का भला करना या शुभ चाहना, यदि न हो सके तो कम से कम किसी का अनर्थ नहीं करना या अशुभ की चाह नहीं रखना, यही धर्म का मूल भी है और यही नैतिकता का भी आधार है। वास्तव में यही व्यक्ति से व्यक्ति के बीच के मानवीय सम्बंधों को भी निर्धारित करती है। अध्यात्म की विशेषता यह है कि वह सदैव व्यक्ति को

मानवीय मूल्यों से युक्त श्रेष्ठ आचरण की ओर ही उत्साहित करता है। खेद की बात यह है कि यहां के लोग आज अध्यात्म से कोसों दूर होते जा रहे हैं। धन–सम्पत्ति के दंभ में लोगों का जीवन दिशाविहीन होकर चौराहे पर खड़ी है। किंतु शायद ही कोई इस कटु सत्य को स्वीकारने में सहमत होगा क्योंकि उनकी नज़रों में जीवन की यथार्थता आर्थिक रूप से सम्पन्नता में ही है।

अनादि काल में सांसारिक सम्बंधों का ताना–बाना तथा व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के मध्य समग्र व्यवहार इसी काय, वाक् और चित्त के स्वभाव से ही निर्गत होता चला आ रहा है। इसलिए स्व और पर के मध्य शुभ एवं अशुभ सारे सम्बंध काय, वाक् एवं चित्त की स्थिति पर निर्भर करता है। इसलिए वाक्, काय और चित्त की रक्षा कैसे की जाए अर्थात अकुशल कर्म करने से कैसे बचा जाए और कुशल कर्म करने को कैसे प्रेरित हो, तथा प्राणी मात्र के सुख के लिए मैत्री, करुणा, मुदिता और उपेक्षा का अभ्यास कैसे किया जाए, यही सार्वभौमिक एवं मानवीय धर्म सुनिश्चित करता है। इसलिए धर्म विशुद्ध रूप से नैतिकता पर आधारित है न कि बाह्याडम्बरों पर। अध्यात्म का केन्द्रबिन्दु यही है। व्यक्ति की आध्यात्मिक यात्रा का शुभारम्भ काय, वाक् एवं चित्त की परिशुद्धता से शुरू होकर व्यक्तित्व की पराकाष्ठा जो अन्तिम फल है, में समाप्त होती है। वास्तव में अपने चित्त को राग, द्वेष, मोह और ईर्ष्या आदि से कलुषित करना ही दुःख को न्यौता देना है। परहित में ही सुख का सारा रहस्य छुपा हुआ है। वास्तव में परहित ही वास्तविक स्व–सुख का आधार बनता है। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि अपने जीवन की खुशहाली में दूसरों का हित सर्वोपरि है। अतः आध्यात्मिक दृष्टि से परस्पर कटुता के लिए कोई स्थान नहीं है।

हम देखते हैं कि लाहुलियों के जीवन में भौतिकता एवं आध्यात्मिकता में असन्तुलन काफी बढ़ चुका है। यदि समय रहते इसे संतुलित नहीं किया गया तो लाहुली समाज की दिशा किस ओर जाएगी, इसे आसानी से समझा जा सकता है। लाहुली पारम्परिक ग्राम्य–जीवन का वह परिदृश्य जिसमें अभाव के बावजूद आपसी रिश्ता जो मानवीय संवेदनाओं एवं सामाजिक मूल्यों पर आधारित था, धुंधला पड़ता जा रहा है, टूटता जा रहा है। आज यहां के ग्राम समाज में परस्पर प्रतिस्पर्धा का एक घिनौना रूप दिखाई देता है। जहां पारंपरिक मूल्यों को दरकिनार करते हुए तथाकथित सम्पन्नता के दंभ में व्यक्ति और समाज जीता चला जा रहा है। परस्पर सहयोग, मैत्रीभाव एवं सह–अस्तित्व पर आधारित सामाजिक ढ़ांचा जो वर्षों से यहां के समाज की नींव रही है, आज डगमगाने लगा है। परस्पर सम्बंधों में भी औपचारिकता ही शेष रह गई है। सदियों से यहां के ग्रामीण समाज का सौहार्दपूर्ण एवं मानवीय परम्परा रही है कि जब कभी भी आस–पड़ोस में कोई कृषि एवं अन्य कार्यों में पिछड़ जाता था तो गांव का हर कोई उसकी सहायता के लिए दौड़ा चला आता था ताकि कार्य से पिछड़ा वह परिवार भी गांव के साथ कंधे से कंधा मिला कर चल सके। गांव वालों के श्रमदान के योग एवं मदद की सामूहिक चेतना से उसे अकेले पड़ने का एहसास तक नहीं होता था। सामुदायिक सहयोग की भावना से ओत–प्रोत ग्रामवासी सुख–दुःख के हर माहौल में एक दूसरे के पूरक हुआ करते थे। सुख–साधन के अभाव के बावजूद परस्पर मैत्री भाव के कारण यथाशक्ति एक–दूसरे की सहायता में आगे आ कर सहयोग करते रहते थे। आज इस नए महौल एवं नई पीढ़ी के दौर में यह दिवास्वप्न सा लगने लगता है। उन मानवीय मूल्यों को यदि याद दिला भी दो तो प्रतिक्रियास्वरूप जवाब मिलता है–"आज वह ज़माना नहीं रहा। काश! उन्हें समझा पाते

कि मनुष्य की अच्छाई चाहे किसी भी ज़माने में हो वह अच्छाई ही रहती है, भले ही उस अच्छाई को देखने वाले लोगों ने स्वार्थ का चश्मा पहन लिया हो। आज आर्थिक तरक्की की अन्धी दौड़ में यहां के लोग इन मानवीय सामाजिक सम्बन्धों को भुला चुके हैं। आज हर कोई चाहे कृषि कार्य से सम्बन्ध हो या अन्य कोई घरेलू कार्य, एक –दूसरे से आगे निकलने की होड़ में सदियों से चली आ रही परस्पर मानवीय सम्बन्धों को महत्त्व न देकर स्वार्थपूर्ति में लगा हुआ है। इतनी जल्दी इन मानवीय सामाजिक ढ़ांचों का टूटना शुरू हो जाएगा, इसकी कल्पना भी हमारे पूर्वजों ने नहीं की होगी। यद्यपि सम्पन्नता के कारण अनेक कार्य अवश्य आसान हो जाते हैं; किन्तु सम्पन्नता के दम्भ में व्यक्ति एवं समाज के रिश्ते को भूल जाना कहां तक सही है, इसका मूल्यांकन होना चाहिए। आज जो अपने को हर दृष्टि से सुसम्पन्न एवं समर्थ समझते हैं, क्या यही दशा आगे भी सदैव रहेगी। वक्त किस करवट बैठेगा कुछ कहा नहीं जा सकता। इसलिए परस्पर सह–अस्तित्व की भावना से मददगार होना व्यक्ति एवं समाज दोनों के हित में है। अतः ग्राम समाज के उन मानवीय मूल्यों की रक्षा कर परस्पर सहयोग की भावना को बनाए रखने में ही भलाई है। वास्तविकता यही है कि दुनियां की हर चीज़ अपने अस्तित्व के लिए एक–दूसरे की अपेक्षा रखती है। इसलिए सामुदायिक सद्भावना से ओत–प्रोत मानवीय मूल्यों की रक्षा अपेक्षित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आर्थिक अहंकार पारस्परिक प्रतिस्पर्धा, अविश्वास और वर्चस्वता बनाये रखने हेतु आज यहां के लोग पूर्वजों के द्वारा स्थापित प्राचीन परम्पराओं प्रथाओं तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को लगभग तिलांजलि दे चुके हैं। इन्हीं मानवता आधारित सामाजिक मूल्यों ने सदियों तक यहां के ग्रामीण जन–जीवन को सुव्यवस्थित और सुगठित रखा था, वे आज अपना अस्तित्व खोते जा रहे हैं। आज प्रत्येक लाहुली परिवार भी शेष दुनियां की तरह विकास की इस अन्धी दौड़ में शामिल है। किसी भी समाज में विकास एक सतत प्रक्रिया है। इसका अपलाप नहीं किया जा सकता। किंतु उस विकास की दशा और दिशा में ग्राम–समाज का स्वरूप आर्थिक रूप से संपन्न लोगों के वर्चस्व के कारण आपसी कटुता अपनी चरम सीमा तक पहुंच गई है। सभी आपसी एवं सामाजिक रिश्ते स्वार्थ के आधार पर तय होने लगे हैं। मानवीय संवेदनाएं ईर्ष्या और द्वेष के दल–दल में फंस कर कराह रही हैं। परस्पर मैत्री, स्नेह, सहयोग, समर्पण और भाईचारे का भाव आज खोखली नज़र आने लगी है। आस पड़ोस का संबंध जहां पारिवारिक रिश्ते से भी ऊंचा था, ने आज परस्पर प्रतिस्पर्धा का एक घिनौना रूप अख्तियार कर लिया है। आज एक पड़ोसी दूसरे पड़ोसी की उन्नति को देखने की सहनशक्ति खो चुका है। आर्थिक प्रतिस्पर्धा की दौड़ में मनुष्य पशुता की ओर बढ़ रहा है। जीवन में मृत्यु भी एक सत्य है, की चिन्ता न करते हुए एक–दूसरे से ईर्ष्या–द्वेष के कारण अपने और दूसरों के जीवन को नष्ट करने पर तुले हुए हैं; जबकि इस क्रिया में दूसरों की अपेक्षा अपना ही अधिक अहित होता है। इसकी ओर कोई विचार नहीं करता। यद्यपि हर एक के जीवन में सुख–दुःख का दौर आता जाता रहता है। कोई भी संपन्न व्यक्ति सदैव सुखी नहीं रह सकता। परिस्थितिवश उसे दुःख भोगना पड़ता हैं अन्ततोगत्वा मृत्यु का दुःख किसी की अमीरी या गरीबी को नहीं देखता है। इससे कोई भी न आज तक बचा है और न ही बचेगा। तो क्यों हम अपने इस अमूल्य जीवन को दूसरों को सताने में या दूसरों के विनाश में बिताएं? जिसके कारण परिणाम में हमें दुःख के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलेगा। क्योंकि कर्मफल

किसी राजा या रंक में भेद नहीं करता, अपितु समान रूप से फल देना उसकी नियति है। हर क्षण हर पल हम मृत्यु के नज़दीक जा रहे हैं, हमारा यह अमूल्य जीवन सांसारिक झंझावातों में फंसता जा रहा है। इसी लिए जीवन की निःसारता, कर्मफल का भय, मृत्यु की वास्तविकता और मानव जीवन की दुलर्भता आदि का एहसास जो अध्यात्म के मार्ग को प्रशस्त करता है, को क्यों नहीं अपनाते हैं? इसी लिए हमें अपने आचरण और विचारों में आत्मीयता लानी होगी। भाईचारा और प्रेम–व्यवहार के द्वारा गांव के सामाजिक परिवेश के जीवन को मधुर बनाना होगा। मानव हृदय प्रेम और करुणा के लिए है न कि परस्पर कटुता उत्पन्न करने के लिए, इसलिए कटुता क्यों लाएं? हमें दूसरों का सहयोग और सहानुभूति पाने हेतु अपने ही समान दूसरों के साथ भी वैसा ही व्यवहार करना होगा। दूसरों के सुख–दुःख को अपना सुख–दुःख समझना होगा। तभी स्वस्थ सामाजिक ढांचा बरकरार रह सकता है। वास्तव में लाहुल जैसे ग्राम–समाज के परिवेश में हम तभी सुखी रह सकते हैं जब पड़ोसी भी सुखी रहें। क्योंकि आज अधिकांश परिवारों के सदस्य परदेश में रह रहे हैं। ऐसी स्थिति में पड़ोसी एवं गांव वाले ही सुख–दुःख में सहभागी होते हैं। वास्तविकता यही है कि संपूर्ण जीवन उसी गांव में रहना है, इसी लिए परस्पर संबंधों में कटुता की अपेक्षा प्रेम, करुणा, भाईचारे से जीवन बिताने में ही सभी का हित है।

लाहुल के युवा एवं युवतियों को अच्छी शिक्षा एवं उच्च अध्ययन का अवसर मिलने के कारण उनमें अपने पारिवारिक एवं सामाजिक दायित्वों के प्रति बोध बढ़ा होगा, ऐसी आशा करना अनुचित नहीं होगा। उन्हें वर्तमान विश्व–परिदृश्य का भली भांति ज्ञान है। सुखमय जीवन का रहस्य निश्चित रूप से भौतिकता की प्रकर्षता में निहित नहीं है। यूरोप एवं अमेरिका आदि देशों के आर्थिक रूप से अत्यंत विकसित होने के बावजूद वहां के सामाजिक परिवेश में जो विविध समस्याएं विशेषकर मानसिक एवं सामाजिक विघटन की समस्याएं हैं, से इस बात का खुलासा हो जाता है कि केवल भौतिक सुख से जीवन में संतुष्टि नहीं मिलती है। आर्थिक सम्पन्नता के वावजूद वहां का समाज जिस मनोविकार से ग्रस्त है इसका एकमात्र कारण अध्यात्म और भौतिकता में असंतुलन है। यद्यपि आज इस बात को वहां के लोग समझ रहे हैं और इस असंतुलन को मिटाने में सतत प्रयत्नशील नज़र आ रहे हैं। इधर पहले की अपेक्षा पाश्चात्य देशों के विद्वानों की रुचि भारतीय अध्यात्म के प्रति जिस गति से बढ़ रही है उससे लगता है कि भविष्य में भारतीयों को अपनी विविध धार्मिक एवं सांस्कषतिक शास्त्रीय अध्ययन के लिए पश्चिम के विद्वानों की शरण लेनी पड़ेगी। वहां का जनमानस भले ही किसी विशेष पंथ, परंपरा या धर्म से जुड़ा हो, किंतु तर्क विश्लेषण और अनुभव के आधार पर किसी भी अध्यात्म के मार्ग पर जाने में वे संकोच नहीं करते हैं। इसलिए वे अन्य क्षेत्रों की तरह आध्यात्मिक खोज में लग्न, उत्साह, परिश्रम के साथ–साथ वैचारिक स्वतंत्रता का पक्षधर होने के कारण बड़ी तेज़ी से विकास की ओर उन्मुख हैं। यह पश्चिम के लोगों की अपनी विशेषता है। किंतु हमारे पास आध्यात्मिक विद्या की सारी जमा पूंजी होने के कारण इस ओर ध्यान देना तो दूर इस विषय पर बात करने वालों को नयी पीढ़ी के लोग दकियानूसी करार देने लगते हैं। ऐसी स्थिति में जीवन में यथार्थ सुख की कल्पना कैसे की जा सकती है? मैं समझता हूं कि इन समस्याओं के मूल में उपयुक्त जीवन दृष्टि में असंतुलन अर्थात भौतिकता का अन्धानुकरण और धर्म एवं अध्यात्म की उपेक्षा है, जिसको गहराई से समझने की आवश्यकता है। वर्तमान समय में लाहुल

की नई पीढ़ी का अध्यात्म के प्रति अरुचि दिखलाना सुखद भविष्य का द्योतक नहीं है। अध्यात्म की यथार्थता को पहचान कर तदनुरूप जीवन यापन करने से जीवन में सुख और आनन्द की ही वृद्धि होगी। भोग–विलासिता का जीवन तृष्णा को ही बढ़ाएगा। तृष्णा जो एक अंतहीन चाह है, उसको अध्यात्म का मार्ग ही विराम दे सकता है। अतः भोगवाद और आध्यात्मवाद का सामंजस्य स्थापित कर लाहुल का विकास उत्तरोत्तर हो, विकास के चरम बिंदु को छुएं, कोई भी व्यक्ति अभाव का जीवन न जिए, किंतु व्यक्ति से व्यक्ति के बीच मानवीय संबंधों को न तोड़े, व्यक्तिगत एवं सामुदायिक जीवन में सद्भाव एवं सहिष्णुता को बनाए रखें। मैत्री और करुणा के बल पर परस्पर संबंधों का विकास हो। दूसरे की उन्नति को अपनी ईर्ष्या का कारण न बनाएं, अपितु मुदिता से युक्त होकर दूसरे की उन्नति का सम्मान करें। परस्पर कटुता का भाव आने पर उपेक्षा भावना में लीन रहें अर्थात अपने चित्त को तटस्थ रखने का प्रयास करें। संक्षेप में यही वे मानवीय मूल्य हैं जिनके आधार पर व्यक्ति से व्यक्ति के बीच सौहार्द सम्बन्ध स्थापित किए जा सकते हैं और इससे समाज को भी एक नई दिशा मिलेगी।

बौद्ध परम्परा में लाहुल घाटी डाक एवं डाकिनियों का क्षेत्र है। किंतु आज यह क्षेत्र अपनी मौलिकता को खोता जा रहा है। ऐसी आशा है कि लाहुल घाटी की नई पीढ़ी अध्यात्म के प्रति आस्थावान पूर्वजों की दी हुई मानवीय एवं पारंपरिक मूल्यों की रक्षा करते हुए स्व–पर के भेद को मिटाकर व्यक्ति, ग्राम और समाज को समृद्ध बनाने में अपना अमूल्य योगदान देगी। लाहुल घाटी का जो बाह्य एवं आंतरिक सौंदर्य है, उस सौंदर्य को बनाए रखेंगे। निश्चित रूप से परिवर्तन के इस दौर में सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की रक्षा करने का नैतिक दायित्व लाहुल के प्रबुद्धजनों एवं नई पीढ़ी के युवाओं का है। साथ ही आशा है यहां का जन साधारण भी उपयुक्त बिंदुओं पर अवश्य आत्म मंथन करेगा और व्यक्तिगत एवं सामुदायिक नैतिक दायित्वों के प्रति समर्पित होकर लाहुल घाटी को खुशहाल बनाएगा। विशेषकर लाहुल की नई पीढ़ी परिवर्तन के साथ–साथ मानवीय सामाजिक मूल्यों में हो रहे ह्रास की ओर भी अवश्य ध्यान देगी। परिवर्तन एक शाश्वत सत्य है। विचार ही परिवर्तन की पृष्ठभूमि निर्मित करते हैं इसलिए परिवर्तन की दशा एवं दिशा तय करते समय मानवीय संबंधों की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। किसी भी देश और काल में समाज का मूल्यांकन उस समाज में निहित सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्वस्थ परंपरा एवं विशिष्टता के साथ–साथ मानवीय मूल्यों पर आधारित नैतिक मूल्यों से होती है।

।। भवतु सर्वमंगलम्।।

उच्च तिब्बती अध्ययन संस्थान,
सारनाथ, बनारस।

हादसों के शहर में सम्भावनाओं के द्वार

–अंशुमाला

आज संपूर्ण विश्व एक हादसों का शहर बन गया है जहां कब क्या घट जाए कुछ पता नहीं है। इस शहर की व्यवस्था बहुत से आरोपों प्रत्यारोपों, विवादों और विरोधों के बीच जैसे तैसे चल रही है। सम्मेलन, भाषण, सभाएं, जुलूस, स्वागत, अभिनन्दन, अपीलें, नीतियां, अखबारों की सुर्खियां, रंगीन पत्र–प्रत्रिकाओं के चमकते पृष्ठ, कुछ सनसनीखेज़ चेहरों के ऊलझ जुलूल बयान फाइलों के ढेर, कूड़े के ढेर और उनमें जीवन के रंग ढूंढती सैंकड़ों उंगलियां, दनदनाती हुई गोलियां, सुलगते बमकांड़, बड़ी–बड़ी योजनाएं, असंख्य याचक आंखें, बे बड़े स्लमों में फैलती मानवीयता, भागती हुई गाड़ियां और इन सब बातों में उलझकर भागते हुए मनुष्य की अंतहीन, अकथनीय यात्रा? क्या सिर्फ दो गज़ जमीन और दौ मीटर कपड़े के टुकड़े के लिए? शायद जन्म से नंगे बदन आने की शर्मिन्दगी को खत्म करने के लिए ही मनुष्य जन्म से मौत तक का लंबा सफर तय करता है और इस पर भी उसका दुर्भाग्य कि उसे इन चीज़ों के लिए भी दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। खैर इसी अंतहीन यात्रा का नाम जीवन है लेकिन यही पूरा सच नहीं है, जीवन की इस कठिन यात्रा के लिए कुछ राही ऐसे भी हैं जिन्होंने तमाम अंधकार और भयानकताओं के बीच में अपनी आस्था का दीपक जलाकर जीने की कला और उसका वास्तविक सौंदर्य खोज निकाला है। एक विश्व एक राष्ट्र आज ऐसे ही लोगों और बुद्धिजीवियों का एक सुनहरा सपना है। लेकिन यह सपना तब तक पूरा नहीं हो सकता जब तक कि इस संसार के सभी देश अपनी निजी समस्याओं से निपटकर अंतर्राष्ट्रीय एकीकरण की बात सोचें।

भारत एक बहुत बड़ा देश है और तीव्र गति से विकास के पथ पर अग्रसर है लेकिन इस महान देश के कई राज्य अपनी निजी समस्याओं के साथ–साथ आतंकवाद और हिंसा की आग में झुलसते रहे हैं – जम्मू–कश्मीर बंटवारे के बाद से पाकिस्तान की महत्वाकांक्षा की आग में जल रहा है, पंजाब और पूर्वी भारत के राज्य आतंकवाद की आग में और बिहार और उत्तर प्रदेश जातीय हिंसा का शिकार हुए हैं। भारत के पूर्व में स्थित आसाम अपने आस–पास स्थित सभी छोटे बड़े राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए इसे सात बहनों का देश भी कहा जाता है। प्राकृतिक सुंदरता और संपदा से भरपूर यह राज्य आज भी अनेक बुनियादी समस्याओं से जूझ रहा है बावजूद इसके कि इसमें विकास की अपार संभावनाएं विद्यमान हैं। निजी समस्याओं से जूझते हुए लोगों पर जब आतंकवाद की मार पड़ती है तो वे स्वयं को असहाय पाते हैं। आसाम को खुशहाल बनाने और उसे एक स्वतंत्र राज्य का दर्जा दिलवाकर सबको रोज़गार देने का कोरा सपना दिखाने वाले कुछ स्वार्थी लोगों ने इस राज्य में कई गुटों और संगठनों को जन्म दे दिया है जो निर्दोष नवयुवकों को बहकाकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं और अपने राज्य को आतंकवाद की आग में झोंक रहे हैं। कुछ विश्वसनीय सूत्रों के अनुसार इन संगठनों और गुटों के प्रमुख व्यक्तियों ने गलत तरीके से धन जमा करके, बड़ी मात्रा में बंगलादेश और आस पास के कई देशों में निवेश कर रखा है और आज ये लोग बहुत बड़े बेंक बैलेंस और अपार धन संपदा के मालिक हैं। जबकि आम आदमी दो वक्त की रोटी के लिए कड़ा संघर्ष कर रहा है। अल्फा, सल्फा, बोडो समुदाय और इसी तरह के कई छोटे

बड़े संगठन आसाम में सक्रिय हैं। इन संगठनों का संबंध पाकिस्तान की खुफिया एजेंसी आईएसआई के साथ बताया जाता है। डकैती, गोलीबारी, बम कांड, फिरौती और सामूहिक हत्याकांड इत्यादि कई अमानवीय कुकर्म करके दहशत फैलाना इनका प्रमुख कार्य है। इन आतंकवादी अवैध संगठनों का मुख्य कार्यक्षेत्र आसाम का नलबाड़ी ज़िला गोहाटी से 90 किलोमीटर पीछे है यहां पर कई संगठन सक्रिय हैं और यहां से वे बाकी क्षेत्रों में अपने नापाक इरादों को सफल करने का षड़यंत्र रचा करते हैं और इस शहर में विकास की जितनी संभावनाएं हैं उन पर पानी फेर देते हैं।

गोहाटी, आसाम राज्य की राजधानी होने के साथ साथ एक बड़ा और मुख्य शहर है। संपूर्ण राज्य की शासन व्यवस्था वहीं से संचालित होती है। आसाम राज्य की 90 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में और मात्र दस प्रतिशत जनसंख्या शहरों में रहती है। यहां के लोगों का मुख्य व्यवसाय कृषि और इसके साथ–साथ कई लघु कुटीर उद्योग, मछली पालन और कपड़े की बुनाई है। आसाम के कई गांवों में आज भी पुराने तरीकों से रेशम और पाट की चादरें और साड़ियां बुनी जाती हैं जिनकी कीमत तीन चार सौ से शुरू होकर 10–15 हज़ार तक होती है। बुनाई के अलावा बांस और जूट से बना हुआ सामान भी यहां के लोगों की आय का मुख्य साधन है। गांव की अनपढ़ औरतों को आत्मनिर्भर बनाने का भी यह एक महत्वपूर्ण ज़रिया है। यहां की बुनकर औरतें न केवल अपने और अपने परिवार के लिए कपड़ा बुनती हैं बल्कि उनके द्वारा बुनी गई मेखला चादर और रेशम और पाट की साड़ियों की देश विदेश में भारी मांग है। मेखला चादर यहां की औरतों का मुख्य पहनावा और धोती कुर्ता और गमछा यहां के पुरुषों का मुख्य पहनावा है। डेढ़ मीटर लंबा और आधा मीटर चौड़ा गमछा, असमिया संस्कृति में अपना विशिष्ट महत्व रखता है। त्यौहारों के अवसर पर एक दूसरे का सम्मान करने के लिए उन्हें गमछा भेंट किया जाता है। 50 रुपये के इस सूती कपड़े में लोगों को एक सूत्र में बांधे रखने की अद्‌भुत क्षमता है।

आसाम राज्य की संस्कृति अति प्राचीन और भव्य है। बिहु आसाम का मुख्य त्यौहार है इसे एक वर्ष में चार बार मनाया जाता है और इसे भिन्न–भिन्न नामों से पुकारा जाता है। माघ बिहु, योग बिहु, गोरू बिहु, और एक बिहु मार्च अप्रैल में बसंत के आगमन में मनाया जाता है। बिहु के दौरान यहां के लोगों में एक उमंग देखने को मिलती है। गांवों में बिहु का अपना ही विशिष्ट आनन्द और महत्त्व है। गांवों में शाम को किसी पेड़ के नीचे मूंगा और पाट की मेखला चादर पहनी युवतियां पंक्तियों में बिहु नृत्य करती हैं। उनके लोकगीतों की मधुर ध्वनि हृदय को एक नए उत्साह से भर देती है। नृत्य करते–करते जब कोई युवक या युवती किसी के गले में गमछा डाल देता है; तो उसका मतलब होता है कि वह उसे अपना जीवन साथी बनाना चाहता है। गांव वाले इस सम्बन्ध को सहर्ष स्वीकार कर देते हैं। बिहु के अलावा आसाम में पूजा को विशेष महत्त्व दिया जाता है। यहां के लोग मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं रखते, यहां प्रत्येक घर में नामघर बनाए जाते हैं जिनमें श्रीमद्‌भग्वद् गीता या कोई अन्य पवित्र ग्रंथ रखा जाता है। और अगरबत्ती जलाकर इसी की नित्य पूजा की जाती है। इसके अतिरिक्त यहां पर दुर्गा और विश्वकर्मा की पूजा को भी हर्षोल्लास के साथ मनाया जाता है। इन दिनों झांकियों के लिए मां दुर्गा और विश्वकर्मा की अत्यन्त आकर्षक मूर्तियां बनाई जाती हैं और शाम को उन्हें जल में विसर्जित किया जाता है।

असमिया भाषा आसाम की मातृभाषा है। इसके अतिरिक्त यहां पढ़े–लिखे लोगों में अंग्रेज़ी

और हिन्दी भाषा भी बोली और समझी जाती है। मछली के विभिन्न व्यंजन और चावल यहां के लोगों का प्रिय भोजन है। चावल आसाम की मुख्य फसल है, यहां धान की कई किस्में पैदा होती हैं। जिनमें जोंहा विशिष्ट है जो एक खास किस्म की महक के लिए प्रसिद्ध है। आसाम के लोग मुख्यतः मांसाहारी हैं। गांव में प्रत्येक घर में एक छोटा सा तालाब होता है जिसमें मछलियां और बतखें पाली जाती हैं। इनके साथ–साथ ये लोग मुर्गियां और सूअर भी पालते हैं। सूअर के मांस को यहां बड़े चाव से खाया जाता है। गांव में घर मुख्यतः बांस से निर्मित और हवादार होते हैं जो लोगों का गर्मी से बचाव करते हैं। जब भी किसी घर में बालक या बालिका का जन्म होता है तो यह लोग ताम्बूल या नारियल का पेड़ लगाते हैं। इस उदेश्य के साथ कि जब बच्चा बड़ा हो जाएगा तो पेड़ उनके पालन–पोषण में माता–पिता की सहायता करेगा। ताम्बूल और पान का पेड़ यहां के लोगों की संस्कृति के साथ जुड़ा हुआ है। खाने के पश्चात यहां पर आदर के लिए सुपारी या गुलकन्द लगा हुआ पान का पत्ता दिया जाता है। नारियल भी आसाम की संस्कृति का एक मुख्य अंश है। मन्दिरों के अलावा इसका उपयोग विभिन्न प्रकार के व्यंजनों और मिठाइयों में किया जाता है। जिनमें नारियल के लड्डू और चावल के आटे के बीच में नारियल और चीनी मिलाकर तैयार किया गया पीठा मुख्य है। इन दोनों मिठाइयों को बिहु के दौरान खूब खाया और खिलाया जाता है।

आसाम की राजधानी गोहाटी में कई संस्कृतियों के लोग मिलजुल कर रहते हैं, जिनमें राजस्थान से आए हुए मारवाड़ी लोग मुख्य हैं, इनका मुख्य व्यवसाय व्यापार है, इन लोगों के पूर्वज कई वर्षों पहले यहां व्यापार के लिए आए थे और यहीं के होकर रह गए। इनके अलावा यहां पर मुस्लिम लोग बहुत संख्या में रहते हैं। मणिपुर और मिज़ोरम से आए हुए लोग भी यहां प्यार से रहते हैं।

आसाम में कई चाय के बगीचे हैं। आसाम की चाय पूरे देश भर में और विदेशों में भी लोकप्रिय हैं। यहां पर तेल के कई कारखाने और तेल फैक्ट्रियां है। इसके अतिरिक्त यहां कोयले की छुट–पुट खानें भी हैं।

पर्यटन की दृष्टि से भी आसाम पूर्वी भारत का मुख्य भाग है और सभी अन्य राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है। इसकी राजधानी गोहाटी में अनेक दर्शनीय स्थान हैं। गोहाटी से 300–400 किलोमीटर की दूरी पर कार्बी आंगलांग और हाफलांग दो छोटे छोटे पहाड़ी शहर हैं, यहां पर नीलांचल पहाड़ियों का नयनाभिराम दृश्य मन को असीम आन्नद से भर देता है। कामाख्या माता का मन्दिर भारत के बड़े–बड़े तीर्थों और पवित्र स्थानों में से एक माना जाता है। कहते हैं कि इसका निर्माण अहोम राजाओं द्वारा एक ही विशाल पत्थर को तराश कर किया गया है। इसके अतिरिक्त गोहाटी का प्रमुख दर्शनीय स्थल बह्मपुत्र नदी के बीच में एक टीले नुमा पहाड़ की चोटी पर स्थित उमा–चांद मन्दिर है। यहां तक छोटे स्टीमरों द्वारा जाया जाता है। इसके अलावा गोहाटी में भुवनेश्वर मन्दिर, गोपालबाल मन्दिर, नवग्रह मन्दिर, बगुलामुखी मन्दिर, वशिष्ठ मंन्दिर और गोहाटी म्यूज़ियम इत्यादि प्रमुख दर्शनीय स्थल हैं। प्रमुख ऐतिहासिक स्थलों में शिवसागर, डिब्रूगढ़ नलबाड़ी, मांजुली द्वीप और श्री शंकर देव कलाक्षेत्र प्रमुख हैं। इन स्थानों में हमारी सभ्यता और संस्कृति के सजीव दर्शन हो जाते हैं।

श्रीश्री शंकरदेव जी आसाम राज्य में बड़े आदर से लिया जाने वाला नाम है। यह आसाम के एक महापुरुष हुए जिन्होंने यहां वैष्णव धर्म की नींव डाली और एकशरण नामधर्म के महत्त्व को लोगों तक पहुंचाया। श्री शंकरदेव एक महान, धार्मिक संत, समाज सुधारक और महान लेखक थे। उनकी कुछ प्रसिद्व रचनाएं हैं– कीर्तन घोष, रुक्मिणी हरण, चिन्ह यात्रा, भक्ति प्रदीप, परिजात हरण, गुणमाला और बोरगीत इत्यादि। आसाम राज्य के लोग कहते हैं कि इन्होंने जिस भी चीज़ को छुआ वह सोना बन गई। इनकी मृत्यु के बाद इनके शिष्य माधवदेव ने इनके अभियान को आगे बढ़ाया।

24 फरवरी, 1826 की यांदबू सन्धि के बाद आसाम राज्य पूरी तरह से ब्रिटिश प्रशासन के अधीन हो गया था। तब तक अपनी आज़ादी को बरकरार रखने के लिए आसाम के वीर योद्धाओं ने बड़ा संघर्ष किया, मुगलों के खिलाफ और फिर अंग्रेज़ों के खिलाफ। लच्छित बरफूकन, मनी राम दीवान, उनकी सहयोगी प्याली बरुआ और कनकलता इत्यादि स्वतंत्रता संग्राम के प्रमुख वीर हैं जिन्होंने अपने प्राणों की आहुति देकर अपनी मातृभूमि के कर्ज़ को उतारा।

पूर्वी भारत, भारत देश का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है पर यहां के लोग स्वयं को भारत की केन्द्रीय विचारधारा से कटा हुआ महसूस करते हैं। वे यह सोचते हैं कि केन्द्रीय सरकार और भारत के लोग इनकी उपेक्षा करते हैं, इन्हें अलग नज़रों से देखा जाता है जबकि ऐसा कुछ नहीं है। लेकिन उनके मन में अलगाववाद की इस भावना ने घर कर लिया है। आसाम राज्य के साथ लगते कई छोटे राज्यों जैसे मणिपुर, मिज़ोरम, नागालेंड, मेघालय, अरुणाचल प्रदेश इत्यादि पर भारतीय संस्कृति की अपेक्षा चीन, जापान, थाईलेंड और वर्मा इत्यादि देशों की संस्कृति की स्पष्ट झलक देखने को मिलती है। इन लोगों के लिए भारतीय होने का सिर्फ इतना मतलब है कि मंत्रीगण अपनी सरकार चलाने के लिए दिल्ली आते–जाते रहते हैं। यह अलगाव की भावना भारत के लिए खतरनाक सिद्ध हो सकती है।

इन सारी बातों के अतिरिक्त पूर्वी भारत के प्रदेशों में विकास की अपार संभावनाएं छिपी हुई हैं। चाहे वह व्यापार की दृष्टि से हो, पर्यटन की दृष्टि से, कला की दृष्टि से और अपनी विशिष्ट संस्कृति के अदान–प्रदान की दृष्टि से हो, ज़रूरत है केवल उन्हें समझने, पहचानने की और अपनेपन की भावना के साथ उन्हें साथ लेकर चलने की, फिर आतंकवाद और हिंसा जैसे भयानक राक्षस भी हमारा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। अलगाववाद की इस गलत विचारधारा ने आतंकवादियों और स्वार्थी लोगों के लिए सीढ़ी का काम किया है। एम.वी. कामथ ने अपनी पुस्तक The Other Face of India में इस अलगाववाद की धारणा का प्रभावशाली ढंग से वर्णन किया है। वे लिखते हैं कि जब वे मिज़ोरम गए तो एक मिज़ो अधिकारी ने अपनी भावनाओं को बहुत रूखे शब्दों में व्यक्त किया।

मिज़ो संगठन के अध्यक्ष ने बताया, "We feel at home everywhere else except in India. Make us feel Indian. Don't divide people, get them all together and bring them home. And don't do anything for us.do things us sond us the people you have – instead of difcards from your administrative service to teach us and work with us. Then all misunderstandings will vansih."

इसी तरह मेघायल में 95 प्रतिशत लोग ईसाई धर्म को मानने वाले हैं और केवल 5 प्रतिशत लोग हिन्दू हैं फिर भी हम एक सूत्र में बंधे हुए हैं और मेघालय के मुख्यमंत्री श्री बी. बी. लिंगदो इसी एकता की भावना को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि ''हम राष्ट्रीय भक्ति और एकता की भावना में किसी से पीछे नहीं हैं'' और हमें यह कहना कि सी.आई.ए. या के.जी.बी., मिशनरी द्वारा संचालित हैं, हमारी राष्ट्रीयता की भावना का अपमान करना है। हमारे पास सोचने समझने के लिए अपना दिमाग है।''

भारत के लोगों का धर्म सहनशीलता और सम्मान की नींव पर टिका हुआ है। अतः हमें अपने धर्म का निर्वाह करते हुए एक दिशा में प्रयत्नशील रहकर सारी समस्याओं पर काबू पाना होगा। तभी एक विश्व एक राष्ट्र का सपना हकीकत के धरातल पर उतरना शुरू करेगा।

समय किस तरह से बीत गया

–शिव कुमार ठाकुर

मैं कमरे में पूर्व से पश्चिम की दिशा में सोता हूं। मेरे ठीक सामने दुर्गा माता का एक कलेंडर लगा हुआ है और उस पर दीवार घड़ी रखी गई है। जब में सुबह उठा तो उस पर सात बजकर 35 मिनट और 55 सैकिण्ड हुए थे। उसके बाद थोड़ा सा विचार करने और दाएं बाएं देखने पर जब मैंने दीवार घड़ी की तरफ देखा तो वहां पर सात बजकर 28 मिनट और 17 सैकिण्ड हो गए थे। उस दीवार घड़ी के साथ ही तीन नन्हें बच्चों वाली एक तस्वीर है। दाईं तरफ से प्रथम नन्हा बच्चा दाएं पैर के ऊपर दायां और बाएं पैर के उपर बायां हाथ रखे हुए है और सामने की तरफ बैठा हुआ थोड़ा मुस्करा रहा है। मध्य का नन्हा बालक पैरों के बीच एक बड़ा सा गेंद रखे हुए है और अर्ध हाथ जोड़े हुए बैठा है। अंतिम और तृतीय बालक के दाएं हाथ में एक खिलौना खरगोश है, बायां हाथ सामने की तरफ करके थोड़ा सा मुस्कराए हुए बैठा है। फिर से जब मैंने दीवार घड़ी पर नज़र दौड़ाई तो सात बजकर 35 मिनट और 15 सैकिण्ड हुए थे। नन्हें बच्चों वाली तस्वीर के साथ ही हनुमान जी की तस्वीर है और इस पर एक हार है। महावीर जी उस तस्वीर में आंखे अर्ध खुली करके समाधि में लीन हैं। तस्वीर के बाएं कंधे के सामने एक मन्दिर है और मन्दिर के पीछे एक पहाड़ी भी है। इतना लिखने पर जब मैंने दीवार घड़ी की तरफ देखा, सात बजकर 41 मिनट और 29 सैकिण्ड हो गए थे। महावीर के साथ में ही एक तिथि कलेण्डर भी लगा हुआ है और उस पर एक स्त्री की तस्वीर भी है। वह स्त्री बाएं हाथ में एक कटोरे में फल उठाए हुए है और दाएं हाथ में घूंघट को उपर उठाए हुए बैठी है। इतना कुछ देखने और लिखने पर जब मैंने दीवार घड़ी की ओर देखा, वहां पर सात बजकर 45 मिनट और 45 सैकिण्ड हो गए थे। इतना सा कार्य और व्यर्थ का कार्य जिससे मुझे किसी प्रकार का कोई लाभ नहीं। इस दौरान मुझे समय का पता नहीं चला कि समय किस तरह से बीत गया।

सच कहते हैं कि हमें व्यर्थ के कामों में समय नहीं गंवाना चाहिए।

गांव फ्लाइन, डोभी, कुल्लू।

ऊँ मणि पद्मे हूँ

– श्रवण कुमार

ईश्वर एक है परंतु उसकी आराधना व प्राप्ति का तरीका प्रत्येक धर्म में अलग–अलग बतलाया गया है। चाहे वह भक्ति, प्रार्थाना या मंत्रों द्वारा हो। प्रत्येक का अपना एक अलग ढंग है। प्रत्येक धर्म विभिन्न बीज तथा धारिणी मंत्रों द्वारा अराधना व उपासना का मार्ग दर्शाता है। बौद्ध धर्म में भी ऐसा ही एक धारिणी मंत्र है जो मानव को मोक्ष प्राप्ति की राह दिखलाता है। यह धारिणी मंत्र है–''ऊँ मणि पद्मे हूँ'। यह मंत्र विशेषतया आर्य अवलोकितेश्वर की अराधना का धारिणी मंत्र है। इसे षड़ाक्षरी मंत्र भी कहा जाता है जिसका कारण छह अक्षरों का होना है। इस मंत्र के प्रत्येक अक्षर का अपना ही अर्थ है। सर्व प्रथम ऊँ का अर्थ देवी देवताओं विशेषकर आर्य अवलोकितेश्वर के लिए उपासना के दोरान संबोधन करने से है। लाहुल स्पीति में खास धार्मिक त्यौहारों खासकर लोसर या फागली के समय प्रयुक्त होने वाला 'ऊमा' शब्द भी 'ऊँ' का पर्यायवाची बताया गया है। इसके बाद मणि का अर्थ है– बहुमूल्य रत्न। परन्तु बौद्ध धर्म में मणि का वास्तविक तात्पर्य भगवान बुद्ध, उनकी शिक्षाएं व उनके ज्ञानी शिष्यों, इन सभी त्रिरत्नों से है। इसके बाद पद्मे का अर्थ कमल के फूल से है। अंत में हूँ का अर्थ है –सिद्वि करना, स्तुति या उपासना करना।

यदि हम इन सभी को जोड़ दें तो इसका संयुक्त अर्थ होगा हे आर्य अवलोकितेश्वर। हम बहुमूल्य रत्नों के समान भगवान बुद्व के त्रिरत्नों का अनुसरण करके कमल के समान अपने आर्य की अराधना करते हैं। आर्य अवलोकितेश्वर के इस धारिणी मंत्र के उच्चारण मात्र से बुरे ग्रहों, रोगों, राग, द्वेष, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, इन सभी का नाश होता है। इस मंत्र का निरन्तर जाप करने से पूर्व संचित पापों का नाश होना भी बताया गया है।

इस मंत्र के जाप से जीवन में शान्ति, सुख व समृद्धि की प्राप्ति होना भी बताया गया है। मोक्ष प्राप्ति का मार्ग भी यही मंत्र प्रशस्त करता है। इस प्रकार इस मंत्र का मानव जीवन में बड़ा महत्त्व है। हम सभी को चाहिए कि अपनी दिनचर्या में से कुछ समय निकालकर इस मंत्र का उच्चारण करें व इसके भावों को जीवन में अपनाएं।

हि.प्र.वि.वि.शिमला

स्वंगला एरतोग

उद्देश्य

1 सांस्कृतिक विरासत को संजोना व संकलित करना व उन्हें प्रकाश में लाना, पुनर्जीवित व संवर्धित करना।

2 लोक विधाओं को चिन्हित करना जो लुप्त होने के कगार पर हैं।

3 साहित्यिक रूचियों का विकास व सष्जन के प्रति रूझान पैदा करना।

4 सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक उत्थान के लिए एक मंच बनाना जहां विचारों का सम्प्रेषण एवं जन प्रतिक्रिया का आकलन संभव हो।

स्वंगला एरतोग

लाहुल–स्पीति में कला व संस्कृति उत्थान हेतु सोसाइटी (रजि0)

151/1 रामशिला अखाड़ा बाजार कुल्लू पिन 175101 हि0 प्र0

सोसाइटीज़ रजिस्ट्रेशन एक्ट 21, 1860 के अधीन पंजीकृत संख्या ल0 स0/42/93

स्वंगला एरतोग सोसाइटी रजि0 के लिए प्रकाशक एवं सतीश कुमार द्वारा सीटी कंप्यूटर ढालपुर कुल्लू में टाईप, सैटिंग तथा गुप्ता प्रिंटर्ज द्वारा मुद्रित एवं नीरामाटी, जिला कुल्लू हि0 प्र0 से प्रकाशित। संपादक सुश्री डा0 छीमे शाशनी